सूचि ।

	अध्याय	पृष्ठ	विषय
भूमिका		१—३	पूनरावृति की भूमिका
		४—५	प्रस्तावना
	१	७—९	आरम्भ ।
	२	९—१६	७० श्लोकी गीता कहाँ से मिली ।
	३	१६—२३	इस ७० श्लोकी गीता को क्यों प्राचीन माना जाय ?
	४	२४—२५	श्लोकों की संख्या ।
	५	२५—२८	७० श्लोकी गीता की सूची ।
	६	२८—३२	इस गीता की अपूर्वत्व ।
	मूल पुस्तक	३३—७८	प्राचीनभगवद्गीता (७०० के स्थान में ७० श्लोक ।
	परिशिष्ट-१	७९—८४	गीता का एक श्लोक ।

पुनरावृति की भूमिका।

बड़े हर्ष की बात है कि मेरी इस प्राचीन भगवद्गीता का जनता ने यथोचित् आदर किया, क्योंकि सं० १९८२ से ८४ तक के केवल दो वर्षों में ही सारी प्रतियां २००० खप गई और मांगे बढ़ रही हैं (श्री युक्त जैमिनी मेहता जी बी० ए० वैदिक मिशनरी ने, जो मार्च १९२८ ई० में फिजी द्वीप में धर्म प्रचारार्थ चले गये हैं एक पत्रमें यह लिखा था कि इस पुस्तक की अगर ५०० प्रतियां मेरे पास भेज दें तो मैं फौरन खपा दू" परन्तु उनकी इस मांग की मैं पूर्ति न कर सका)। हिन्दी के सिवाय अन्य भाषाओं में भी इस ग्रन्थ के अनुवाद हुये हैं। पञ्जाब शाहपुर नगर के पंडित श्रुतिकान्त जी शास्त्री ने मुझ से आज्ञा लेकर उर्दू अनुवाद छपवाया है और गुजराती में छपवाने वाले हैं कलकत्ता के पण्डित ज्योतिन्द्रनाथ मल्लिक उपदेशक आर्य समाज ने भी इसी प्रकार बंगला भाषा में उलथा कर लिया है जो शीघ्र छपेगा, इस प्राचीन भगवद्गीता परजो अनेकों समालोचनायें प्रकाशित हुई थी, उन में भी अधिकांश प्रशंसा परक पाई गई इस लिये पाठकों के सूचनार्थ मैं उन में से केवल एक को यहां उद्धृत किये देता हूं।

प्राचीन भगवद्गीता के बारे में सुविख्यात दार्शनिक लेखक

श्रीमान कन्नोमलजी। एम० ए० जज धौलपुर राज्य लिखते हैं (देखो प्रताप कानपुर ता० १५ अगस्त १६२६)।

"स्वामी जी ने श्लोकों की संगति लगाने में बड़ा परिश्रम किया है और इस कार्य में आपको सफलता भी प्राप्त हुई है।

इस पुस्तक के ७० श्लोक पढ़ने से यह भली भांति ज्ञात हो जाता है कि जो कुछ भगवद्गीता का सिद्धान्त है वह सभी इनके अन्तर्गत है। स्वामी जी ने श्लोकों की संगति बड़ी कुशलता और बुद्धिमत्ता से लगाई है। अपने बहुत से प्रमाणों से यह भी सिद्ध किया है कि असली गीता यही है। ... ...हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं हैं कि स्वामी जी की पुस्तक विद्वानों के विचार करने योग्य है। सर्व साधारण लोगों के पढ़ने के लिए यह अत्यन्तोपयोगी है। आपने श्रुतियों के जो प्रमाण दिये हैं, उनसे श्लोकों का महत्व और भी बढ़ गया है। हिन्दी संसार के लिये यह पुस्तक एक नई चीज़ है।"

इन सम्मतियों से उत्साहित हो कर मैं इस अपूर्व ग्रन्थ की पुनरावृत्ति उचित मानता हूं और स्वयं निर्धन संन्यासी होने के कारण इस समय श्रीयुत् गोविन्दराम हासानन्द जो कलकत्ता को इस पुस्तक को एकबार मात्र छपवा कर धार्मिक साहित्य का प्रचार कराने की आज्ञा देता हूं।

विशाल भारत (६१ सर्कुलर रोड) कलकत्ता के १, २, ३, अंकों में एक लेख-माला 'प्राचीन विशाल भारत की यात्रा' शीर्षक श्रीकालीदासजी नाग एम०ए०डी० लिट (पेरिस) की ओर से छपा

है उस में उन्होंने उस बाली द्वीप (जहां से यह प्राचीन भगवद्गीता प्राप्त हुई थी) की सैर करके बहुत कुछ हालात छपाये हैं अतः जो लोग इस सम्बन्ध में छान बीन (Research) करना चाहें उक्त लेखों से भी लाभ उठा सकते हैं।

सर्वहितैषि

वर्तमान निवास कलकत्ता
१९ कार्नवालिस स्ट्रीट
तिथि चैत्रशुक्ल ७ संवत् १९८५ वि०

मंगलानन्द पूरी
१३८ अतर सूया, प्रयाग



प्रस्तावना ।

ओम् पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ ॐ शान्तिः ३॥

यह प्राचीन भगवद्गीता क्या है, कहां से कैसे मुझे प्राप्त हुई और इसका मान्य क्यों किया गया? इत्यादि बातों को पाठक आगे भूमिका में पढ़ेंगे ।

गीता-प्रेमी सज्जनों से प्रार्थना है कि भूमिका को अवश्य आद्योपान्त पढ़ें क्योंकि ७०० श्लोकों वाली वर्तमान प्रचलित भगवद्गीता के स्थान में ७० श्लोक मात्र को क्यों प्रकाशित कराया गया? यह बड़ा गम्भीर प्रश्न है, जिसका उत्तर तभी ठीक ठीक समझ में आयेगा जब आप मेरी भूमिका को अन्त तक पढ़ लेंगे ।

इन सत्तर श्लोकों का अनुवाद यथा सम्भव सरल भाषा में ही किया गया है और आवश्यकतानुसार कठिन विषय को समझा देने के लिये मैं ने टिप्पणियां भी दे दी है। गीता प्रेमी सज्जन गण यह देख कर बहुत प्रसन्न होंगे कि किन गीता वाक्यों का आधार किन वेद या उपनिषद्-वाक्यों पर है, यह भी बड़े परिश्रम से मैं ने अपनी टिप्पणियों में अंकित कर दिया है* ।

---

* उपनिषद् वाक्यों को भी "श्रुति" कहा गया है, यद्यपि "श्रुति" शब्द केवल ऋक् यजुः, साम, अथर्व इन चार संहिताओं मात्र का बोधक है, परन्तु यतः हमारे वेदान्ती विद्वान् तथा उपनिषदों को भी श्रुति कहते हैं अतः उनके सुभीते के लिये मैंने भी इसी परिपाटी का अनुकरण किया है।

४—जिस कार्य में मुझे सब से भारी परिश्रम उठाना पड़ा, वह यह है कि इन सत्तर श्लोकों का एक दूसरे से सम्बन्ध सोचने विचारने में बहुत मनन करना पड़ा; परन्तु सफलता प्राप्त हो जाने पर जो अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ वह अकथनीय है।

पाठक प्रत्येक श्लोक के भाषार्थ से पूर्व "सङ्गति" पढ़ेंगे, इन सत्तर श्लोकों में किस की किस से क्या सङ्गति है, यह निर्णय कर लेना बड़ा कठिन कार्य था, क्योंकि प्रत्येक गीता प्रेमी के मस्तिष्क में वर्तमान गीता के श्लोकों का सम्बन्ध घर किये हुये है—मेरा भी यही हाल था—लेकिन इस प्राचीन गीता की दशा सर्वथा भिन्न है! अगर इसमें एक श्लोक वर्तमान गीता के दूसरे अध्याय का ३७वां है तो अगला श्लोक ४७वां है, अतः प्रत्यक्ष है कि ३७वें की सङ्गति ३८वें के साथ तो सरलतया लग सकती पर बीच के ६ श्लोकोंको छोड़ देने पर कैसे मेल लगाया जाय और क्या किया जाय? यही बड़ा टेढ़ा सवाल था जिसने ७० श्लोकों के मनन पर मेरे ६ मास का भारी समय खर्च करा दिया।

अच्छा अब जब कि मैं उस कठिन समस्या को हल कर चुका हूं, जनता पर यह हर्ष-सूचना प्रकट किये देता हूं कि बहुत सम्भव है कि प्राचीन गीता इतने ही और इन्हीं श्लोकों में रही होगी। हां शायद कुछ वाक्य और भी होंगे जो तालपत्रों के कीड़ों से खाये जाने आदि कारणों से नष्ट हो गये होंगे, क्योंकि

अनेक श्लोक आधे चौपाई मात्र मिले हैं।

धन्यवाद—जिन पुस्तकों की मैंने सहायता ली है उनके लेखकों को धन्यवाद देता हूं। मुख्यतया स्वर्गवासी लोकमान्य श्री पण्डित बाल गङ्गाधर तिलक महाराज की गीता रहस्य तथा श्रीयुक्त कन्नोमल जी एम, ए, के गीता दर्शन से मुझे सहायता मिली है। और "माडर्न रिव्यू" कलकत्ता की तो आधार शिला ही रक्खी हुई है। उस के सञ्चालकों को जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है।

क्या प्राचीन पुस्तकों—कठ, मुण्डक, छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि—— के लेखक ऋषि महर्षियों को भी धन्यवाद दिया जाय? अभी तक यह प्रणाली जारी नहीं हुई परन्तु मेरी समझ में तो होनी ही चाहिये। हमारे पूर्वज तो इस निमित्त "ऋषि—ऋण" तथा दैनिक ऋषि तर्पण की प्रथा डाल गये हैं अतः मैं उन जगद्गुरु महर्षियो को सतशः नमस्कार करता हूं।

सर्व-हितेच्छु,

मङ्गलानन्दः।



प्राचीन भगवद्गीता

(७०० के स्थान में ७० श्लोक)

भूमिका ।

पहला अध्याय ।

—:o:—

श्री मद्भगवद्गीता संसार के अनुपम ग्रन्थों में से एक है। यह महाभारत के भीष्म पर्व में है; जहां से पृथक निकाल कर प्रचार किया गया है। वहां यह १८ अध्यायों में ७०० श्लोकों में पाया जाता है।

महाभारत युद्ध के आरम्भ में अर्जुन को शंका हो गई थी कि भाई बन्धुओं खास कर गुरू और पितामह पर बाण

चलाना पाप है। इस शंका का उत्तर उसको भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने जो कुछ दिया था वही "भगवद्गीता" (भगवान के द्वारा गायन किया गया हुआ) कहलाती है। बहुतेरे लोगों का यह ख्याल है कि उस युद्ध काल में रणभूमि में खड़े खड़े इतना भारी व्याख्यान (७०० श्लोकों में) दिया जाना सम्भव न था, किन्तु बहुत सम्भव है कि श्री कृष्ण जी ने कुछ थोड़ा सा उपदेश दिया होगा जो पीछे से बढ़ता चला गया।

लोकमान्य पण्डित बाल गङ्गाधर तिलक महाराज अपने गीता रहस्य के पृष्ठ ७ पर इसी प्रसङ्ग को उठा कर अन्त में लिखते हैं—

"गीता की रचना के सम्बन्ध में मन की ऐसी प्रवृति होने पर गीता सागर में डुबकी लगा कर, किसी ने सात, किसी ने अट्ठाईस, किसी ने छत्तीस और किसी ने सौ मूल श्लोक गीता के खोज निकाले हैं............यह नहीं कि बहिरंग परीक्षा की ये सब बातें सर्वथा निरर्थक है।"

निदान मैं स्वयं भी गत ३७ सालों से भगवद्गीता का प्रेमी होने के कारण काफी युक्तियों के आधार पर इसी निर्णय पर आरूढ़ था कि निस्सन्देह श्री कृष्णार्जुन संवाद वर्तमान भगवद्गीता से बहुत ही न्यून रहा होगा। मैं इस कोशिश में लगा था कि इस बात की जांच करूं कि वस्तुतः कृष्णार्जुन सम्वाद में कितने और कौन कौन से श्लोक हो सकते हैं? परन्तु

बहुत हाथ पांव मारने पर भी यथेष्ट सफलता न प्राप्त हो सकी इतनेमें मुझे यह ७० श्लोकी गीता देखने का अवसर प्राप्त हुआ। मैंने इन श्लोकों को ध्यान से पढ़ा और परस्पर इनका एक दूसरे के साथ सम्बन्ध या सङ्गति लगा कर विचार किया तो मेरा दृढ़ विश्वास हो गया कि भगवान कृष्ण जी का उपदेश इतने ही में आ जाता है, मानों मूल ये ७० श्लोक थे और इन्हीं की व्याख्या में शेष श्लोक रचे गये, अतः मूल और टीका मिल कर आज ७०० श्लोकों की भगवद्गीता मिलती है।

इस प्रकार इन ७० श्लोकों की गीता के मिल जाने से मेरे अन्तः करण में जो आनन्द प्राप्त हुआ वह अकथनीय है और मैं गीता प्रेमी भाइयों को भी अपने इस "आनन्द" में सम्मिलित करने के लिये इस ७० श्लोकी गीता को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करता हूं।

दूसरा अध्याय !

७० श्लोकी गीता कहां से मिली ?

अब मैं पाठकों को यह बतलाता हूं कि यह ७० श्लोकी गीता कहां से किस प्रकार प्राप्त हुई ?

इसको मैंने प्रथम बांकीपुर के साप्ताहिक "पाटलिपुत्र श्रावण शुक्ला २, शनिवार संवत् १९७१ वि० में पढ़ा, फिर वहां जिस लेख के आधार पर छपा था, उसको भी देखा जो सन

१९१४ ई०के जुलाई मास के "माडर्न रिव्यू" कलकत्ता" Modern Review में पृष्ट ३२ से ३८ तक में प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक डाक्टर नरहर गोपाल सर देसाई महाशय हैं। लेखका शीर्षक है:—

The Bhagavad Gita from the Island of Bah.

"बाली द्वीप से प्राप्त भगवद्गीता ।"

इस लेख का सारांश निम्न प्रकार है:—

बाली नामक एक छोटा सा द्वीप जावा द्वीप के पास है। जावा द्वीप में हिन्दू बसती थी, राज्य भी हिन्दुओं का था जिसे सन् १५७८ ई० में अरबवाले (मुसलमान जाति) ने नष्ट कर डाला। वहां के हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया गया जिन में अब तक भी हिन्दुत्व के संस्कार पाये जाते हैं। जावा में कुछ बौद्ध भी हैं पर अब हिन्दू नहीं हैं। यह अति प्राचीन देश है, वाल्मीकि रामायण में इसका वर्णन ("यव द्वीप" नाम से आया है)*। जावा द्वीप हिन्दू सभ्यता का केन्द्र था और बड़े

---

* देखो प्रमाण:—

यत्नवंतो यव द्वीपं सप्त राज्योप शोभितम्।
सुवर्ण रूप्यकं द्वीपं सुवर्ण कर मण्डितम्॥

वा० रा० किष्किंधा कां० ४० वां सर्ग ३० वां श्लोक।

अर्थ—और तुम बड़े यत्न के साथ सप्त राज्य सुशोभित यव द्वीप

बड़े विद्वान, हुनरमन्द, शस्त्रधारी, शूरवीर तथा सभी प्रकार के लोग वहां पहुंचते थे। बौद्ध लोग भी पहुंचे, और भारत से ब्राह्मण लोग भी संस्कृत की पुस्तकें लेकर वहां पहुंचे थे।

डाक्टर देसाई जी कहते हैं कि मैं पेनांग देश में नौकरी पर था। वहां एक पुस्तक पढ़ते हुये अनायास मेरी दृष्टि एक शब्द "बाली द्वीप में हिन्दू रामायण तथा हिन्दुओं के ४ वर्ण" पर पड़ी। निस्सन्देह डाक्टर जी के हृदय में स्वभावतः यह उत्कण्ठा उत्पन्न हुई कि "बाली" कहां है? इसकी खोज करनी चाहिये। नक्शा (ऐट्लस) को ध्यान पूर्वक देख कर यह ज्ञात किया कि जावा द्वीप के पास यह बाली टापू विद्यमान है। निदान किसी न किसी प्रकार आपने मई सन् १६१२ ई० में बाली को प्रस्थान किया। जावा द्वीप के बन्दर सुर्बेजा (Surbaia) में जाकर ठहरे, क्योंकि वहीं से बाली को जहाज जाते हैं!

में जाना और सुवर्णकारी पुष्पों से शोभित रूपक द्वीप में ढूढ़ना यह तुम्हारा कर्तव्य है ॥ ३० ॥

'यव' का 'जव' या जावा बन गया है और इसी श्लोक में जो अन्य सुवर्ण-रूप द्वीप कहा गया है वह आज कल "सूमात्रा टापू" कहलाता है।"

(सुग्रीव ने सीता जी की खोज निमित्त जिन्हें भेजा उन्हें बतलाया कि किन किन देशों में वे जांय इसी बीच का यह श्लोक है)।

डाक्टर देसाई जी ने बहुत कुछ चाहा कि इस सुवेज्ञा में बाली के हिन्दुओं का कुछ हाल ज्ञात हो, परन्तु कुछ भी पता न लगा, लेकिन अन्त में एक भारतीय मुसलमान (बोहरा जाति वाला) मिल गया, जो बाली द्वीप के राजधानी बूलेलांग Bule Lang में रहता था और यहां व्यापारी मोल खरीदने आया था। उसने बतलाया कि बाली में पढ़े लिखे ब्राह्मण लोग हैं जो "पण्डा" कहलाते हैं और उस द्वीप के एक बन्दर करंग आसेम Karang Assm में एक हिन्दू राजा भी रहता है।

यह भेद पाते ही डाक्टर देसाई महाशय इसी बन्दर (करंग०) के जहाज पर जा सवार हुये। दो दिनों की समुद्रीय यात्रा पश्चात् वहां पहुंच गये।

रात के ६ बजे जहाज बन्दर पर पहुंचा। अतः बिस्तरा सामान लिये हुये उस समय तीन मील जाना परदेशी कुली के साथ कितना कष्ट-साध्य था।

अस्तु, प्रातः काल डाक्टर जी उस गांव में इधर उधर घूमने लगे कि पण्डा लोगों तथा राजा जी का दर्शन करें, यह सुन कर कि राजा जी ११ बजे के पश्चात् लोगों से मुलाकात करते हैं डाक्टर जी अपने मुसलमान Cuide "पथ-प्रदर्शक" के साथ किसी पण्डा के मकान की तलाश में निकल पड़े। मार्ग में वह मुसलमान पथ-प्रदर्शक वहां की जनता को यह सुझा रहा था कि तुम्हारे देश का यह ब्राह्मण आया हुआ है। जिसे वे लोग आश्चर्य की दृष्टि से देखते थे। डाक्टर जी दो

तीन पण्डाओं के घरों पर पहुंचे, परन्तु वहां जो संस्कृत पुस्तकें हैं वह देव नागरी अक्षरों में नहीं हैं, कवि भाषा के अक्षरों में लिखी हैं। * वहां से निराश होकर डाक्टर देशाई जी उस राजा के महल पर पहुंचे। राजा जी भारत के ब्राह्मण को आया देख कर दंग रह गये, बहुतेरी बातें भारत के सम्बन्ध में पूंछी, आतिथ्य निमित्त गाय का दूध मंगाया जो वहां दुष्प्राप्य है, क्योंकि उस देश के लोग दूध नहीं सेवन करते, यद्यपि गायें वहां बहुत हैं।

डाक्टर देशाई वहां तीन दिन ठहरे रहे और यह ज्ञात किया कि पूर्व काल में चाहे अनेकों संस्कृत ग्रन्थ वहां रहे हों, पर अब नहीं हैं। हां, धार्मिक गाथाओं को उन लोगों ने वाली द्वीप की भाषा में लिख रखा है, जिन को वे पढ़ा सुना करते हैं। हमारे देसाई जी निराश होकर केवल जहाज की प्रतीक्षा में ठहरे थे कि इतने में बूढ़े राजा के नवयुवक पुत्र ने इन को बुला भेजा और अन्य बातों के सिलसिले में यह भी पूंछा कि क्या हिन्दुस्थान में इस समय महाभारत के सारे पर्व मिल सकते हैं? उत्तर "हां" पाने पर इस राजपुत्र ने एक ब्राह्मण को आज्ञा दी कि पुस्तकालय में से भीष्म पर्व निकाल लावे। यह लकड़ी के सन्दूकों में बड़ी सफाई के साथ सुरक्षित है। ये ताड़ के पत्रों पर लिखे रखे हैं, १४ इञ्च लम्बे २॥ इञ्च चौड़े पत्रे

* इसी प्रकार बंगला वालों ने बंगला अक्षरों में तथा मद्रास वालों ने अपने तामील तैलंगी आदि अक्षरों में संस्कृत पुस्तकों को लिख-रक्खा है।

हैं, बीच में छेद करके डोरे से सब को नत्थी कर दिया गया है*। इन पत्रों पर वाली द्वीप की कवि भाषा में सुई से कोंच कोंच कर अक्षर अङ्कित कर दिये गये हैं, जो बहुत स्पष्ट और शुद्ध हैं।

अब भीष्म पर्व पढ़ा जाने लगा—उन वाली निवासी ब्राह्मण का उच्चारण संस्कृत श्लोकों का ऐसा अद्भुत था कि डाक्टर देसाई बड़ी मुश्किल से यह भाँप सके कि वह संस्कृत है।

अब डाक्टर जीके मनमें ख्याल आया कि भीष्म पर्वमे ही तो भगवद्गीता मौजूद है !! अच्छा उसे ही निकलवाना चाहिये, पर वहां वाले भगवद्गीता नाम से सर्वथा अपरिचित थे; निदान बहुत देर तक उलट पलट करने के पश्चात् डाक्टर देसाई ने भगवद्गीता के कुछ श्लोकों को ढूंढ़ ही निकाला। वहां वाले संस्कृत मात्र को श्लोक कहते हैं।

डाक्टर देशाई यह देख कर दंग रह गये कि उस वाली द्वीप के भीष्म पर्व में भगवद्गीता १८ अध्याय के स्थानमें एकही अध्याय की है, जो २३ वें से ४० वें पत्र तक है। उस द्वीप के सब से बड़े विद्वान् पण्डित पडंडा वयान् पिडाड (PadandatWayan Pidad) के द्वारा पढ़वा कर उन गीता-श्लोकों की नकल डाक्टर देसाई ने कर ली।

श्री डाक्टर देसाई अपने उसी लेख में यह प्रकट करते हैं कि

* ऐसे ही ताल-पत्रों पर प्राचीन संस्कृत पुस्तकें भारत के सब भागों में सुरक्षित हैं।

उस वाली-वाली गीता में निम्न विशेषतायें हैं :—

१—यह गीता "धर्म क्षेत्रे" के स्थान में "दृष्ट्वेवं स्वजन"—श्लोक से आरम्भ होती है।

२—इस में अध्यायें नहीं हैं (सब श्लोक एक ही अध्याय में हैं)।

३—७०० श्लोक नहीं हैं।

४—कुछ श्लोकों का तात्पर्य वहां की कवि भाषा में अङ्कित हैं।

५—हमारे (१८ अध्यायों वाली) भगवद्गीता के सब अध्यायों के श्लोक इस में नहीं है।

६—डाक्टर देसाई ने इस गीता में भारतीय गीताके अध्यायों और श्लोकों की सँख्या जांच करके अङ्कित कर दी है।

७—जिस प्रकार हम लोग गीता आदि का पाठ किया करते हैं, इस प्रकार बाली द्वीप में एक पुस्तक कामन्दक नीति-सार का बड़ा प्रचार है।

८—बाली वाले हिन्दू यह कहते थे कि जब सन १४७८ ई० में जावा द्वीप पर मुसलमानी राज्य स्थापित हुआ, उस समय जावा से एक ब्राह्मण वाहूराहू Wahu Rahu अपने धर्म की रक्षा के लिये कुछ धार्मिक पुस्तकें साथ लेकर बाली में भाग आया था; अतः इस बाली में महाभारत के आठ पर्व (आदि, बिराट, भीष्म, मूसल, अस्थानिक, स्वर्गारोहण उद्योग, और आश्रमवासी) मौजूद हैं, शेष पर्व जावा द्वीप में हैं।

६—दो पर्वों—आदि और विराट को डच (Dutch) सरकार ने हालैण्ड देश के हेग (Hague) स्थान में रोमन * अक्षरों में छपवाया है।

१०—अगर कोई जावा को जाकर वहां की बेटेविया विचित्रालय (Bataria Museum) में रक्खी हुई इन अपूर्व पुस्तकों को ध्यान से पढ़े तो जावा का संस्कृत-साहित्य संसार में प्रकाशित हो सकता है।

तीसरा अध्याय।

इस ७० श्लोकी गीता को क्यों प्राचीन माना जाय ?

यह गीता कहाँ से किस प्रकार प्राप्त हुई ? इस बात को ऊपर मैं दर्शा आया हूं। अब प्रश्न यह है कि वर्तमान गीता के ७०० श्लोकों में से किन्हीं को नवीन और किन्हीं को प्राचीन क्यों माना जाय ?

कुछ लोगों का ख्याल यह है कि चाहे कृष्णार्जुन संवाद थोड़ा ही रहा हो और ७०० श्लोकों को पीछे से ही किसीने निर्माण किया हो, तौ भी क्या हरज है; पूरे सात सौ श्लोकों को ही प्राचीन और प्रामाणिक क्यों न माना जाय ?

हमारा उत्तर यह है कि प्राचीन ग्रन्थों की छानबीन करके यह खोज निकालना कि किस ग्रन्थ में कितना और कौन कौन सा भाग मूल प्राचीन है; और क्या क्या पीछे की मिलावट, क्षेपक

* रोमन अक्षर अंग्रेजी की ए, बी, सी, डी आदि हैं।

या टीका आदि हैं----यह जानना और तदनुसार मानना परमावश्यक है। गीता की भी इसी न्याय से जांच पड़ताल होनी चाहिये। समुद्र में डुबकी लगाने वाला जैसे मोती निकाल लाता है, उसी प्रकार इन शास्त्रों के गहन विषयों में डुबकी लगाने वाले भी अनेकों रत्नों को अवश्यमेव खोज निकालेंगे।

पाटलीपुत्र समाचार पत्र (बांकीपुर) के सम्पादक श्रीयुत काशीप्रसाद जी जायसवाल एम० ए० (आक्सफ़ोर्ड) वैरिष्टर एट ला ने इस ७० श्लोकी गीता को प्रकाशित करते हुए जो अपना निर्णय प्रकट किया था वह इस प्रकार हैः—

"इस पुरानी प्रति के सब श्लोक एक साथ पढ़ने से कुछ विषय भंग नहीं मालूम होता। इसे मूल पढ़ने वाले स्वयं देख सकते हैं। गीता के मूल सिद्धान्त सभी इन सत्तर श्लोकों में आ गए हैं। विश्व रूप दर्शन पर लम्बी स्तुति की जगह नमस्कार का केवल एक ही श्लोक इसमें है। और विश्व रूप के चित्रण में केवल तीन, जिन से वर्णन भली भांति व्यक्त हो जाता है। भक्ति-योग के दो ही श्लोक हैं जो अन्तिम श्लोक हैं।

इसके पढ़ने से बहुतेरे लोगों के विचार में आयेगा कि भगवद्गीता का यह पुराना रूप है, जिस में श्रीकृष्ण जी के वचन सत्तर श्लोकों में हैं। प्रचलित गीता के बड़े रूप में कोई भिन्न सिद्धान्त नहीं हैं। सत्तर श्लोकों वाली प्रति मूल है। वर्तमान गीता में मूल और टीका का समावेश है, कोई बाहर की बात नहीं है।"

मैं भी ऐसा ही समझता हूं कि मूल गीता न्यूनाधिक इतने ही श्लोकों में रही होगी। मूल का आशय समझाने के लिये और भी श्लोक रचे गये होंगे, जो मूल और व्याख्या-सहित इस समय सात सौ श्लोक मिलते हैं। अतः मूल गीता पर श्रद्धा रखने वाले गीता प्रेमी सज्जनों के अन्तःकरण की सन्तुष्टि का साधन मान कर मैं इस शास्त्र को प्रकाशित करता हूं।

गीता तथा जिस भारी ग्रन्थ के अन्तर्गत यह है, वह महा भारत कितने बड़े भारी परिवर्तनों का आधार बनाया गया था, इस बात पर मैं कुछ प्रकाश डालना चाहता हूं:—

"१—महाभारत आदि पर्व में लिखा है कि महाभारत के ८८०० श्लोक ऐसे हैं जिन को व्यास और शुकदेव के सिवाय और कोई नहीं जानता।

इससे यूरोपियन विद्वानों का यह विचार है कि वस्तुतः मूल महाभारत केवल ८८०० श्लोकों का ही छोटा ग्रन्थ रहा होगा।

२—फिर आदि पर्व में ही लिखा है कि व्यास जीने २,००० श्लोकों का महाभारत रचा था।

३—फिर महाभारत के दूसरे पर्व में श्लोकों की संख्या ८४, ८३७ बताई गई है।

४—परन्तु आजकल के महाभारत में १०७, ३९९ श्लोक हैं।"

उक्त वाक्य श्रीमान् कन्नोमल जी एम० ए० के गीता दर्शन पृष्ठ ४५ से उद्धृत किया गया है।

अब देखिये लोकमान्य तिलक महाराज क्या कहते हैं:

गीता रहस्य परिशिष्ट भाग ४ पृष्ठ ५५७ पं० ७ पर लिखा है:—

"तथापि हम यह भी नहीं कहते, कि जब मूल भारत का महाभारत बनाया गया होगा, तब मूल गीता में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ होगा।"

(फिर इसी पृष्ठ के पंक्ति २२ पर कहते हैं कि):—

"इसके सिवा, उक्त प्रकार के मूल परिवर्तन भी मूल गीता में हो गये होंगे। ....अत एव यही अनुमान करना पड़ता है कि मूल गीता में जो कुछ परिवर्तन हुए होंगे वे कोई महत्व के न थे, किन्तु वे ऐसे थे जिन से मूल ग्रन्थ के अर्थ को पुष्टि हो गई है।"

(फिर आगे पृष्ठ ५५८ पं० २६ पर कहा है):—

"यहां पर पाठकों को स्मरण रखना चाहिये, कि ये दोनों अर्थात् वर्तमान गीता और वर्तमान महाभारत वही ग्रन्थ हैं, जिन के मूल स्वरूप में कालान्तर से परिवर्तन होता रहा और जो इस समय गीता तथा महाभारत के रूप में उपलब्ध हैं। ये उस समय के पहले के मूल ग्रन्थ नहीं हैं।"

और स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज के जीवन चरित्र (श्री मद्दयानन्द प्रकाश) के गङ्गा कोण्ड ११ वें सर्ग

पृष्ठ १५३ पर हम पढ़ते हैं:—

"वैद्य रामदयाल ने स्वामी जी से कहा कि ग्वालियर राज्य का रहने वाला एक ब्राह्मण हमें कचुरा में मिला था, वह कहता था कि मेरे पास कालिदास रचित संजीवनी नामक एक पुस्तक है। इसमें कालीदास ने अपने समय में महाभारत के ग्यारह सहस्र श्लोकों और दश पुराणों की विद्यमानता प्रकट की है"।

पाठक! इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो रहा है कि न वर्तमान महाभारत मूल ग्रन्थ है और न ही हमारी ७०० श्लोकों की गीता ही भगवान श्री कृष्ण जी के मुखारविन्द की वाणी है। हां, इसमें सन्देह नहीं कि लाख श्लोकों के ही अन्दर मूल महाभारत वाले आठ सहस्र श्लोक शामिल होंगे, इसी प्रकार ७०० में ही कृष्णार्जुन संवाद के कुछ थोड़े वाक्य छिपे पड़े हैं।

ऐसी दशा में जब कि बालीद्वीप से ७० श्लोकी गीता प्राप्त हुई है तो क्यों न यह मान लिया जाय कि मूल ग्रन्थ यही है!!

लो० तिलक महाराज का कथन है कि यह गीता बाली और जावा द्वीपों में संवत् ५३५ में विद्यमान था (देखो गीता रहस्य परिशिष्ट भाग ५ पृ० ५५६) अतः मानना पड़ेगा कि भारत से जावा द्वीप को महाभारत आदि ग्रन्थ पांचवीं शताब्दी विक्रमी से तो बहुत पूर्व ही भेजे जा चुके होंगे!! अच्छा अगर ५०० वर्ष पूर्व का समय माना जाय तो मानों आज से २०००

वर्ष पूर्व भारत से यह गीता जावा द्वीप को गई होगी। और बहुत सम्भव है कि उस समय कृष्णार्जुन संवाद केवल सत्तर पचहत्तर श्लोकों में ही रहा हो; जो भारत से जावा में जाकर सुरक्षित रह गया, किन्तु यहाँ और श्लोक टीका टिप्पणी व्याख्या रूप में सम्मिलित होते गये।

प्रश्न—परन्तु श्री स्वामी शंकराचार्य जी महाराज ने तो पूरे ७०० श्लोकों की गीता पर भाष्य रचा है, इसलिये यह तो मानना ही पड़ेगा कि उक्त स्वामी के समय में पूरे ७०० श्लोकों की गीता विद्यमान थी?

उत्तर—हां, परन्तु स्वामी शंकराचार्य जी महाराज का समय विवादास्पद है। अच्छे अच्छे विद्वानों का निर्णय यह है कि स्वा० शं० ११ वीं शताब्दी सन् ईसवी में (आज से केवल ६०० वर्ष पूर्व) हुये थे। अतः बहुत सम्भव है कि आज से २००० वर्ष पूर्व गीता में केवल ७० श्लोक रहे हों और तब से लेकर स्वामी शंक० के समय तक के ११०० वर्षों में मिलावटें होकर ७०० बन गये हों।

एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि स्वा० शं० जी ने गीता में एक श्लोक क्षेपक माना है (१३ वें अध्याय का प्रथम श्लोक) उसे क्षेपक मान कर भी शामिल रहने दिया है, अतः क्या आश्चर्य है कि और भी अनेकों श्लोक क्षेपक रहे होंगे जिन्हें स्वामी शंकराचार्य्य जी महाराज ने निकाल डाला होगा। इसका प्रमाण भी मिलता है सुनिये :—

षट् शतानि स विंशानि श्लोकानां प्राह केशवः।
अर्जुनः सप्त पञ्चाशत् सप्त षष्टिं तु सञ्जयः।
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते ॥

(महा० भीष्म० ४३। ४. ५)

अर्थ—६२० श्लोक केशव ने कहे हैं। ५७ अर्जुन ने, ६७ सञ्जय ने और एक धृतराष्ट्र ने कहा है। यह गीता की श्लोक-संख्या है।

इस लेखानुसार गीता में ७४५ श्लोक होने चाहिये, परन्तु उसमें केवल ७०१ ही श्लोक हैं। क्या हम मान लें कि महाभारत का उक्त श्लोक बनते समय गीता में ७४५ श्लोक रहे होंगे, परन्तु श्री स्वामी शंकराचार्य्य महाराज ने ४४ श्लोकों को क्षेपक मानकर निकाल डाला होगा।

प्रश्न—लोकमान्य तिलक महाराज तो उक्त लेख में यह सम्मति प्रकाशित करते हैं कि जावा और बाली टापू में जो इतने श्लोक गीता के मिले हैं, सो यह बात नहीं है कि भारत से वहां ७० श्लोकी गीता गई हो; वरन् यह बात हैं कि वहां वालों ने ७०० का तो अर्थ अपने कवि भाषा में लिख लिया है, किन्तु बीच बीच में चुने हुये श्लोक ज्यों के त्यों रख लिये हैं?

उत्तर—यह बात कहां तक ठीक है? इसकी पूरी जांच करने के लिये इस बात की आवश्यकता है कि कोई अन्वेषणकर्त्ता वहां जाकर "कवि" भाषा को सीख कर उन ग्रन्थों को * पढ़े तो

* मै स्वयं अब वहां जाने का इच्छुक हूं? यदि परमात्मा ने सहायता दी तो सफल कार्य हो सकूंगा।

ठीक ठीक पता लगे। फिर तो गीता ही नहीं बल्कि महाभारत की भी जांच हो जायेगी। क्योंकि डाक्टर देसाई जी ने अपने उक्त लेख में यह भी लिखा है :—

" " " It seems that the Maha Bharata is in an abridged form and not as big as the Indian one —

अर्थ—ऐसा मालूम होता है कि वहां पर जो महाभारत है वह संक्षेप-रूप में है, हमारे स्वदेश जैसा भारी ग्रन्थ नहीं है ।"

इस प्रश्न पर मैं एक बात और भी गीता-प्रेमी सज्जनों के विचारार्थ उपस्थित करता हूं, वह यह कि अगर ये ७० श्लोक अन्यों की अपेक्षा प्राचीन न भी माने जायं और यही सिद्ध हो जाय कि जावा या बाली वालों ने चुन चुन कर जिन्हें सर्वोत्तम माना उन श्लोकों को सुरक्षित रक्खा हो, तौ भी इन ७० का मान्य करना उचित ही हैं, क्योंकि जहां वे अन्यों से उत्तम माने जा कर चुन लिये गये, वहाँ खास बात विचारणीय यह है कि इतने श्लोकों में समस्त गीता का आशय आजाता है। और इन श्लोकों की परस्पर सङ्गति बड़े ही उत्तम प्रकार से लग जाती है, जिसे पाठक वहीं देखेंगे।

इस लिये मैं बाली वाले ७० श्लोकों का मान्य करता हूं— वे अन्य श्लोकों से प्राचीन हैं तब तो माननीय हैं ही, पर ऐसा न हो तो भी ७०० में से चुने हुये होने के कारण भी श्रद्धा-पात्र हैं।

चौथा अध्याय ।

श्लोकों की संख्या ।

वाली द्वीप से जो गीता आई है उस में कई श्लोक आधे हैं, कई एक पादमात्र हैं, इस लिये पाठकों के सूचनार्थ मैं यहाँ एक चक्र में उनकी संख्या दिये देता हूं :---

वाली की गीता---श्लोक सूची ।

अध्याय	पूरा श्लोक	३/४ श्लोक,	१/२ श्लोक,	१/४ श्लोक,	विशेष
प्रथम	१	...	३	...	...
दूसरा	१४	...	१	...	...
तीसरा	३	...	...	...	...
चौथा	६	...	४	...	...
पांचवां	१	...	२	...	...
छठवां	५	...	१	...	...
सातवां	५	१	१	२	...
आठवां	३	...	...	...	...
नवाँ	३	...	१	...	...
दसवा	१	४	४	३	एकशब्द अधिक है
ग्यारहवां	७	...	...	४	
तेरहवां	२	...	...	...	
चौदहवां	५	...	...	...	
अठारहवां	१	...	...	...	
जोड़	५७	५	१७	६	

इस प्रकार ५७ पूरे श्लोक हैं, तीन पाद वाले ५, आधे १७ और एक पाद वाले ६ हैं। इन आधे चौथाई को पूरे श्लोकों में लेखा लगाने से ७१॥ साढ़े इकहत्तर श्लोक होते हैं। मैंने आधे चौथाई श्लोकों को पूरे के साथ लगा दिया है, जिससे संख्या ७० की ही ठीक लग जाती है, अतः इसका "सत्तर श्लोकी गीता" नाम रक्खा जाना सार्थक है।

पांचवां अध्याय।

७० श्लोकी गीता की सूची।

इन श्लोकों में क्या क्या विषय आगये हैं, यह बतलाने के लिये मैं यहां इसकी एक सूची बनाये देता हूं:—

(१)--प्रथम दो श्लोकों में पहले अध्याय के ४७ श्लोकों का संक्षिप्त तात्पर्य आ जाता है।

(२)—तीसरे, चौथे श्लोकों को साथ पढ़ने से ज्ञात होता है कि वर्तमान गीता के दूसरे अध्याय के तीसरे से १० वें श्लोक तक में जो अर्जुन का वाक्य है वह अनावश्यक है, क्योंकि वह सब बातें तो प्रथम अध्याय में आ ही चुकी थीं। तीसरे के साथ ११ वें का सिलसिला बड़ी उत्तमता के साथ मिल जाता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी हैं परन्तु मैं विस्तार भय से उनका उल्लेख नहीं कर सकता।

(३)—चौथे से आठवें तक जीवात्मा के अजर अमर अविनाशी होने का ज्ञान बतलाया गया है जो सांख्यदर्शन का सारांश है। (वर्तमान गीता में २।११ से २।३० तक में इसी का विस्तार है।

(४)—११ वें श्लोक में निष्काम कर्म का उपदेश दिया है।

(५)---१२ वें से १६ वें तक में "योग" का उपदेश है। वर्तमान गीता में २।३८ से २।७२ तक में इसी का विस्तार रूप है।

(६)---१७ से १६ तक कर्म काण्ड का उपदेश है। जो वर्तमान गीता के तीसरे अध्याय के ४३ श्लोकों का सारांश है।

(७)----२०-२२ तक पुनर्जन्म (कर्म के फल निमित्त आवागमन आवश्यक है) कहा गया।

(८)—२३ वें से २६ वें तक ज्ञान काण्ड का उपदेश है (जो वर्तमान गीता के ४ थे, पांचवें अध्यायों का सारांश है) ।

(६)—२७ वें में कर्म काण्ड की महिमा है।

(१०)—२८ वें से ३२ वें तक योग (भक्ति का महत्व दर्शाया है।

(११)—३३ वें में उस योग (जीवात्मा के परमात्मासे मिल जाने के उद्योग) का फल बतलाया हैं।

(१२)—३४ वें से ३८ वें तक परमात्मा की सर्वव्यापकता दर्शायी है।

(१३)···३६ वें से ४२ वें तक भक्तों के कर्त्तव्य बतलाये हैं।

(१४)…४३ वें में भगवान् की भक्ति कैसे करे यह बतलाया है।

(१५)…४४, ४५ वें में भक्त भगवान का दर्शन किस रूप में करे, यह बतलाया है।

(१६)…४६ वें में भगवान का दर्शन पाने का सुगम उपाय (निष्काम कर्म) बतलाया है। (इस को श्लोक संख्या ११ से मिला कर पढ़िये)।

(१७)…४७ वें से ५४ वें तक परमात्मा के विभूतियों का वर्णन है। इससे अभिप्राय यह है कि मुमुक्षु प्रभु परमात्मा को सर्वान्तर्यामी रूपमें सर्वत्र रमा हुआ देखने का अभ्यास करे इसी का विस्तार वर्तमान गीता का दसवां अध्याय है।

(१८)…५५ वें में परमात्मा के विश्व-रूप का वर्णन है।

(१९)…५६ वें में यह कहा है कि मनुष्य अपने इनहीं आंखों से परमात्मा के रूपका दर्शन नहीं कर सकता।

(२०)…५७ में परमात्मा का विश्वरूप दर्शन।

(२१)…५८ में अर्जुन की ओर से स्तुति।

(२२)…५९, ६० में अर्जुन का विश्व-रूप परमात्मा को नमस्कार।

(२३)…६१,६२ परमात्मा का दर्शन कौन कर सकता है।

(२४)…६३;६४ परमात्मा का सर्व-व्यापक होना दृष्टान्तों से समझाया गया।

(२५)…६५,६६ सत्व, रज, तम का वर्णन।

(२६)···६७,६८ उक्त तीनों गुणों को पार कर लेने [गुणातीत बन जाने] का उपाय दर्शाया है ।

(२७)···६९ वें में गुणातीत बन जाने का फल बतलाया हैं ।

(२८)···७० वें में गुणातीत बना हुआ महात्मा फिर क्या करे ? वह परमात्मा के शरणागत हो जाय ।

छठवां अध्याय ।

इस गीता की अपूर्वता ।

ऊपर सूची द्वारा पाठकों ने यह ज्ञात कर लिया है कि भगवद्गीता जिन उपदेशों के लिए प्रख्यात है वे सब ही प्रायः संक्षेप रूप से इन ७० श्लोकों में आ गये हैं ।

आरम्भ में शरीर और जीवात्मा का भेद बतला कर परमात्मा का वर्णन किया गया है। फिर कर्म, उपासना (भक्ति), ज्ञान (जो वेदों के तीन विषय कहलाते हैं) का वर्णन आया है। कर्म और उपासना दोनों का साथ कर देने का उपाय निष्काम कर्म है, वह भी आ गया है। उपासना का एक अङ्ग "योग" [समाधि] है, उसका भी विवरण कर दिया गया हैं और अन्त में सर्वोच्च दरजे वाले गुणातीत का भी वर्णन आ गया है ।

इस प्रकार भगवद्गीता के ७०० श्लोकों में जो कुछ है,

वह सब * ही बीज रूप से इन ७० श्लोकों में आ गया है। हां ! कोई बात संक्षेप में और कोई विस्तार में हैं। हम देखते हैं कि जिस बात को सब से ज्यादा वि तार के साथ और ज़ोरदार शब्दों में कहा गया है वह परमात्मा के सर्वव्यापक होने का सिद्धान्त हैं। ७० में से २५ श्लोक इसी विषय को समझाने के लिये आये हैं।

वर्तमान गीता के दो अध्याय [१० वां, ११ वां] पूरे तथा अन्योंके भी कुछ भाग इसी सिद्धान्तके अर्पण किये गये हैं।

इससे यह भली भांति स्पष्ट हो जाता हैं, कि गीता (उपनिषदों वेदों के आधार पर) मनुष्यों को यह दर्शाती है कि तुम्हारा इष्टदेव तुमसे दूर नहीं है, वह घट घट व्यापक सर्वान्तर्यामी है, उसको जहां ढुढ़ोगे वहीं पा जाओगे। वर्तमान गीता के दसवें अध्याय में जो विभूतियों का वर्णन आया है, उसका अभिप्राय केवल यही है कि जो ईश्वर-भक्त अभी प्रत्येक २ वस्तु में ब्रह्म का दर्शन नहीं कर सकता, वह संसार के खास २ चीज़ों ही में ब्रह्म का दर्शन करे। जैसे कहा है कि "वृक्षों में मैं पीपल हूं" इसका तात्पर्य यह है कि प्रथम तो उपासक को उचित है कि प्रत्येक प्रत्येक वृक्ष में ब्रह्म परमात्मा को व्यापक देखने का

---

* परन्तु त्रैतवाद—जीव, ब्रह्म, प्रकृति इन तीनों के अनादि होने का सिद्धान्त—जो वर्तमान गीता के १३ वें अध्याय के १६—२२ तथा १५ वें अ० के १६, १७ वें श्लोकों में वर्णन किया गया है, इस ७० श्लोकी गीता में नहीं है। कोई इसका प्रसंग भी नहीं था।

अभ्यासी बने, लेकिन जो अभी इतना उन्नतात्मा न हो कि सब वृक्षों में परमात्मा को देख सके, वह कम से कम यही भावना धारण करे कि पीपल के पेड़ में मेरा मालिक प्रभु विराजमान हो रहा है इत्यादि। यह विषय हमारी इस गीता में है श्लोक संख्या ४७ से ५४ तक में आया है।

पाठकों को ज्ञात हो कि वर्तमान गीता के ११ वें अध्याय में जो विश्वरूप दर्शन आया है, इससे अनेक लोग भ्रम में पड़ गये हैं, परन्तु वस्तुतः उसका अभिप्राय और कुछ नहीं है सिवाय इसके कि परमात्मा को सर्वत्र व्यापक देखा जाय। भगवान श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को दसवें अध्याय द्वारा खास खास चीज़ों में परमात्मा को देखने का ज्ञान देकर ग्यारहवें अध्याय में यह समझाया कि अब एक पग और आगे बढ़ाओ तो देखोगे कि ब्रह्म परमात्मा साक्षात् सामने विराजमान हैं।

एक बात जो इस ७० श्लोकी गीता पर मनन करने से मैंने ज्ञात कर पाया है, पाठकों को सुनाता हूं।—

वर्तमान गीता में ११ वें अध्याय के १५ वे से ३१ वें श्लोक तक अर्जुन से लम्बी स्तुति कराई गई है, परन्तु इस प्राचीन गीता में केवल दो श्लोक (५८, ५९) स्तुति के आये हैं और इनमें परमात्मा के उस रुप का संकेत है जो रणभूमि में हो सकता है, या जो एक शूरवीर योद्धा के मन में युद्ध-भूमि में जाकर डट जाने पर आना स्वभावतः सम्भव है। अवश्य ही सूक्ष्म विचार करनेवाले गीता-प्रेमी सज्जनों को यह मानना

पड़ेगा कि वर्तमान गीता में इस स्थल पर जो (१५-३१) सत्रह श्लोकों में स्तुति वर्णन की गई है उनमें से केवल ये ही दो श्लोक प्रसंगानुकूल और प्राचीन हो सकते हैं। अन्य श्लोकों जो "ब्रह्मा, शिव, ऋषि, सर्प आदिकों को आपके शरीर में देखता हूं" (११-१५) इत्यादि बातें कही गई हैं वह अप्रासङ्गिक होने के सिवाय अलौकिक भी हैं। क्योंकि ब्रह्मा विष्णु शिव इत्यादि देवताओं के ऐसे रूपों (कि विष्णु की नाभि से कमल उत्पन्न होकर उससे ब्रह्मा उपजे "कमलासनस्थं" का वर्णन तो पुराणों में ही आया है। प्राचीन ग्रन्थों (वेदोंउपनिषदों आदि) में ऐसी बातों का लेश मात्र भी नहीं है, अतः मानना पड़ेगा कि वर्त्तमान गीता की ११ वें अध्याय का यह १५ वां (तथा ऐसे अन्य) श्लोक पुराणों के बन चुकने के पश्चात् भगवद्गीता में मिलाये गये होंगे। हमारी इस ७० श्लोकी गीता में कोई ऐसी बात नहीं पाई जाती, जो आधुनिक काल की गढ़न्त हो और प्राचीन आर्ष ग्रन्थों से विपरीत हो, इस लिये निस्सन्देह हमें इन ७० श्लोकों को अन्यों की अपेक्षा प्राचीन मानने पर विवश होना पड़ता है।

अन्त में एक बात और कथन करके मैं इस भूमिका को समाप्त करता हूं:—

गीता के अन्तिम श्लोक "सर्व धर्मान्०" पर विद्वानों में बड़ा भ्रम फैला हुआ हैं कि यह कैसा उपदेश है कि "सारे धर्मों को छोड़ दो" —इस पर शङ्का होती है कि धर्म कर्मों

को छोड़ कर क्या अधर्मी बन जांय? इस शङ्का का उत्तर यद्यपि विद्वानों ने अनेकों प्रकार दिये हैं, परन्तु पूर्णतया समाधान नहीं हुआ। हर्ष की बात है कि हमारी इस ७० श्लोकी गीता ने इस समस्या को बहुत उत्तमता पूर्वक हल कर दिया है। कैसे? इसको जानने के लिये पाठक ७० वें श्लोक की टिप्पणी को पढ़ लें।

ऐसी अनेकों लाभ दायक बातें हैं जो इस प्राचीन गीता को ध्यान से पढ़ने और मनन करने से ज्ञात होंगी और आशा है कि गीता प्रेमी सज्जन गण उनसे यथेष्ठ लाभ प्राप्त करते हुए मेरे परिश्रम को सफल करेंगे इत्योम् शान्तिः।

शुभम् भवतु जगताम्।

१३८ बलरसूया, प्रयाग। वैसाख, कृष्ण, १२ संवत् १९८२ वि० (२० अप्रेल १९२५)	सर्वहितैच्छु। मंगलानन्द पूरी संन्यासी

ॐ

प्राचीन भगवद्गीता।

(७०० के स्थान में ७० श्लोक)

यह ७० श्लोकी गीता "दृष्ट्वेमं०" श्लोक से आरम्भ होती है। पहला श्लोक यह है:—

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजन माहवे।
न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ॥ १ ॥

(भवद्गीता अ० १ श्लो० २८, ३१, ३२)

अर्थ—(अर्जुन ने कहा) हे कृष्ण! अपने निज लोगों को युद्ध की इच्छा से यहां पर एकत्र हुए देख कर (मैं दुखी हो रहा हूं)। (क्योंकि) इन स्वजनों को मार कर मैं अपना कल्याण नहीं देखता। हे कृष्ण! इस प्रकार के विजय, राज्य और सुख की मुझे तनिक भी आकांक्षा नहीं है।

यदि माम प्रतीकारमशस्त्रं शस्त्र पाणयः।

१

धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेम तरं भवेत् ॥ २ ॥

(भ० गी० १ । ३२, ४६)

अर्थः--बल्कि अगर ऐसा हो कि मैं स्वयं न तो बदला लेने वाला बनूं और न शस्त्रों को हाथ में धारण करूं, इस दशा में मुझ को धृतराष्ट्र की सन्तानें (दुर्योधनादि) मार डालें, तो अवश्य मेरा कल्याण हो जाय ।

क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युप पद्यते ।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

(म० गी० २ । ३)

सङ्गति--अर्जुन की उक्त बातें सुन कर श्रीकृष्ण जी महाराज ने उत्तर दिया...

अर्थ--हे पार्थ ! ऐसा नामर्द मत बन; तुझे यह शोभा नहीं देता । अरे शत्रुओं को ताप देने वाले ! अन्तःकरण की इस क्षुद्र दुर्बलता को छोड़ कर (युद्ध के लिये) खड़ा हो जा ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ ४ ॥

(म० गी० २ । ११)

सङ्गति--वह अन्तःकरण की दुर्बलता क्या है ? यह बतलाते हैं...

अर्थ--(और हे अर्जुन !) जिनके बारे में शोक नहीं करना चाहिये, तू उन्हीं के लिये शोक कर रहा है । तू तो ज्ञानियों की

जैसी बातें कर रहा है (पर ज्ञानी नहीं हैं, क्योंकि) वे पण्डित लोग तो किसीके प्राण जाने न जाने का शोक नहीं किया करते।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ ५ ॥

(भ० गी० २ । १३)

सङ्गति—क्यों नहीं करते ? यह बतलाते हैं ।

अर्थ—जिस तरह इस देह में लड़कपन, जवानी, बुढ़ापा हुआ करते हैं (शरीर की दशा बदलती रहती है) इसी प्रकार इस देहवाला (जीवात्मा) इससे निकलने पर दूसरा* देह पा जाता है (ऐसा समझ कर) वे धीर लोग किसी के मरने जीने का शोक नहीं किया करते ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्व दर्शिभिः ॥ ६ ॥

(भ० गी० २ । १६)

सङ्गति—और अगर यह शंका हो कि संसार में मरना याने नाश हो जाना तो देखा ही जाता है, फिर शोक क्यो न किया जाय--तो उत्तर यह है···

---

* आवागमन पर यहां दृष्टान्त दिया गया है। जैसे लड़के का शरीर जवान हो जानेपर यद्यपि शरीरका आकार बदल जाता है, पर जीवात्मा वही बना रहता है, इसी प्रकार दूसरा जन्म लेने पर भी यद्यपि शरीर बदल जाता है पर जीवात्मा वही बना रहता है ।

इस पर श्रुति यह है :—

"योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ॥ [कठ उपनिषद् ५ । ७]

अर्थ—असत् (नेसती Non-Existence) से भाव (हसती Existence या उत्पत्ति) नहीं हुआ करता, और सत् का अभाव (हसती से नेसती) नहीं हो सकता। इन दोनों के अन्त (असलियत) को तत्त्वदर्शी फिलासफर लोगोंने देख लिया है।(१)

अन्तवन्त इमे देहाः नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनोशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्ध्यस्व भारत ॥ ७ ॥

(म० गी० २। १८)

सङ्गति—ऊपरी श्लोक में आये सत् असत् से यहाँ क्या तात्पर्य है, यह बतलाते हैं...

अर्थ—ये देह [असत् होने से] अन्त वाले हैं और शरीर के मालिक [जीवात्मायें] सदा [सत् होने से] नित्य (अन्त न होनेवाले) कहे गये हैं। हे भारत ! वह [जीवात्मा] तो अविनाशी और अप्रमेय [अचिन्त्य] है, इसलिये [तू उस के मरने का

(१)आशय यह है कि जीवात्मा "सत्" पदार्थ है और सत् [हस्ती] वस्तु कभी असत् [अभाव] या नेसती नहीं हुआ करती. इसी कारण जीवात्मा का अभाव [नेसती] अर्थात् नाश नहीं हो सकता। शरीर के मरने पर भी वह बना रहता है, इस लिये शरीर से जीव के निकल जाने का शोक करना मूर्खों का काम है, ज्ञानियों का नहीं।

इस पर यह श्रुति है :—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।

[ऋग्वेद]

मारे जाने की फिक्र छोड़ कर] युद्ध में डट जा(१) ।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ ८ ॥
(भ० गी० २ । १९)

अर्थ—[क्योंकि] जो कोई इस (जीवात्मा) को मारने वाला मानता है और जो मारा जाने वाला मानता है, वे दोनों असलियत को नहीं जानते [कारण यह कि] वह न तो मारता है न मारा जा सकता है । (२)

स्व धर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ९ ॥
(भ० गी० २ । ३१)

सङ्गति—अच्छा अगर जीवात्माके अमर होनेकी बात पर ध्यान न भी दिया जाय, तो भी अर्जुन को युद्ध से इनकारी न बनना चाहिये था, क्यों ? सुनो:...

अर्थः—अपने धर्म का ख्याल करके भी तुझे (युद्ध से) नहीं

(१) इस पर यह श्रुति है :—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
[कठो० १ । १८]

(२) क्योंकि मरना शरीर का धर्म है, परन्तु जीवात्मा अमर है ।
इस पर यह श्रुति है :—

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥
[कठ उप० २ । १९]

डिगना चाहिये, [क्योंकि] क्षत्रिय के लिये तो युद्ध रूपी धर्म से (१) बढ़ कर श्रेय (कल्याणकारी) और दूसरा कोई काम नहीं है।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः ॥ १० ॥

(भ० गी० २ । ३७)

सङ्गति—वह कल्याणकारी कैसे है सुनो...

अर्थ—अगर तू युद्ध में मारा जायगा तो स्वर्ग को पायेगा और अगर जीत लेगा तो पृथ्वी का राज्य भोगेगा (अतः दोनों हाथ लड्डू हैं) इसलिये हे कौन्तेय ! उठो, युद्ध के लिये निश्चय करके खड़े हो जाओ ।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्म फल हेतुर्भूर्मा ते संगोस्त्वकर्मणि ॥ ११ ॥

(भ० गी० २ । ४७)

सङ्गति—अगर अर्जुन यह कहे कि युद्ध में मार काट रूपी निर्दयता का अनुचित व्यवहार क्यों करूं ? तो भगवान उत्तर देते हैं...

अर्थ—तेरा अधिकार कर्म करने ही में हैं, किन्तु फल भोगने में नहीं है। कर्मों के फलों के कारण मत बनो (अमुक फल मिले यह हेतु मन में रख कर काम करने वाले मत बनो)

(१) इस पर मनुस्मृति का प्रमाण देखो अ० ७ श्लोक ६४, ६५ ।

और तेरा सङ्ग अकर्म में न हो (अर्थात् कर्म करना छोड़ भी मत देना) ।(१)

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।
श्रुति विप्रति पन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योग मवाप्स्यसि ॥ १२ ॥

(भ० गी० २ । ४८, ५३)

सङ्गति—उक्त प्रकार के निष्काम कर्म करने में सुगमता कैसे हो ? सुनो...

अर्थ—सफलता असफलता में समान रहना (सफलता होने पर खुशी के मारे फूल कर कुप्पा न बन जाना, और असफलता पर दुःख से व्याकुल न होना) चाहिये । ऐसी समता ही योग है ।(२) (नाना प्रकार के) वेद-वा-

---

(१) यहां निष्काम कर्म का उपदेश है कि कर्म तो करो परन्तु उसके फल की इच्छा मत रक्खो । कर्मों को केवल अपना कर्तव्य मान कर करो,

इस पर ये श्रुतियां हैं :—

१ ईशा वास्य०———तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः ।

२ कुर्वन्नेवेह कर्माणि० ॥ [यजु० ४० । १; २]

अर्जुन से कहते हैं कि युद्ध करना तेरा कर्तव्य कर्म है, इसीलिये उसे करना ही चाहिये ।

(२) "योग" शब्द का अर्थ है "मिलना और भावार्थ में जीवात्मा का परमात्मा के साथ मेल मिलाप होने को "योग" कहते हैं । हमारा परमात्मा के साथ योग कब होगा ? यहां श्री कृष्ण जी बतलाते हैं कि जब हम सफलता असफलता को बराबर समझने लग जायगे तभी योगी [ईश्वर भक्त] बन सकेंगे ।

क्यों(१)से दुविधा में पड़ी हुई तेरी बुद्धि जब समाधि वृत्ति (२) में स्थिर और निश्चल हो जायगी, तब तू योग को प्राप्त कर लेगा ।

*प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते ॥ १३ ॥
(भ० गी० २ । ५५)

सङ्गति—अब समाधि में अचल होने वाले का लक्षण बतलाते हैं...

अर्थ—हे पार्थ ! जब वह (योगी मन में आनेवाली) सारी कामनाओं को छोड़ देता है और आत्मा(३)से आत्मा में सन्तुष्ट रहता है, तब वह "स्थित प्रज्ञ" (अचल बुद्धिवाला) कहलाता है ।

---

(१) एक वेद वाक्य कहता है कि "यज्ञ करोगे तो स्वर्ग मिलेगा", दूसरा कहता है "दान दोगे तो अगले जन्म में धनाढ्य बनोगे", तीसरा यह है कि "विद्या पढ़ाओगे तो स्वयं विद्वान बनोगे इत्यादि २ वाक्यों से मनुष्यका मन स्वभावतः उ न उन कर्म पर ललचाता है । परन्तु जो मनुष्य ब्रह्म को पाना [मुक्ति में जाना] चाहे, वह उक्त कर्मों में न फंसे किन्तु मन को सब ओर से हटा कर समाधि में लगा देवे तभी सफलता प्राप्त होगी ।

(२) जिसका रूप ध्यान किया जाय उसके स्वरूप में कायम और अपने रूप को भूल जाना, समाधि कहलाता है ।

* एक पाठ [यदा संहरते भी दियो हुआ है ।

(३) आत्मा से आत्मा में संतुष्ट रहना यह है कि जीवात्मा अपने प्रभु परमात्मा ही के चिन्तन में लीन रहे । "आत्मा" शब्द वेदान्त ग्रन्थों में जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों के लिये आता है ।

इस पर यह श्रुति है ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीत राग भयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ १४ ॥

(भ० गी० २ । ५६)

अर्थ—जिसके मन को दुःख में खेद नहीं होता और न सुख में आसक्ति होती है, जिसने प्रीति, भय और क्रोध को छोड़ दिया है, वह मुनि स्थित-धीः (अचल बुद्धि वाला) कहलाता है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ १५ ॥

(भ० गी० २ । ५९)

सङ्गति—प्रश्न—यह जो ऊपर कहा है कि सुख में आसक्त न होना अचल-बुद्धि वाले का लक्षण है, तो यतः गरीब निर्धन लोग भी सुखों से दूर रहा करते हैं, इसलिये क्या उनको भी अचल बुद्धिवाला मान लिया जाय ? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं कि...

अर्थ—निराहारी मनुष्य (जिसे खान, पान या अन्य सुख सामग्री नहीं मिलती) के विषय भोग तो छूट जाते हैं, परन्तु उनकी वासना नहीं छूटती (मन में उन अप्राप्त विषयों का मनन होता रहता है।) अलबत्ता परब्रह्मपरमात्मा को देख (१) लेने पर वासनायें भी निवृत्त हो जाती हैं।

आत्म क्रीड आत्म रतिः क्रियावानेष ब्रह्म विदां वरिष्ठः ॥
[मुण्डक उ० ३ । ४]

(१) देखने से ज्ञान दृष्टि से देखना अर्थात् साक्षात्कार लेना अभीष्ट है।

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥ १६॥
(भ० गी० २। ६६)

सङ्गति—ऐसे परमात्मा का दर्शन कर लेने वालों की दशा किस प्रकार की होती है? सुनो…

अर्थ—सर्व साधारण लोगों को जो रात होती है उस में वे संयमी (परमात्मा के दर्शन करने वाले योगी) लोग जागते हैं, और जिस अवस्था में वे दुनियादार लोग जागते रहते हैं वह उन योगियों की रात्रि है।(१)

देवान् भाव यतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथः॥ १७॥
(भ० गी० ३। ११)

सङ्गति—जो लोग ऊपरी श्लकों के अनुसार अभी योगी

(१) यहां रात दिन अलंकारिक भाषा में आये हैं। अभिप्राय यह है कि योगियों की दशा सांसारिक लोगों से सवथा उलटी रहती है ये दुनियादार लोग तो विषय भोगों में लिप्त रहना हो मात्र परम उद्देश्य मान बैठे हैं; परन्तु वे ब्रह्मज्ञानी इन दुनियावी सुखों पर लात मार कर आगे बढ़ रहे हैं; अतः मानो सांसारिक भोगोंमें फंसना उनकी रात्रि है और परमार्थ चिन्तना ही उनका दिन है। अर्जुन से श्री कृष्णजी कहते हैं कि तू उधर हो या इधर। कहीं दोनों से भ्रष्ट न हो जा कि धोबी का कुत्ता न घर का रहे न घाट का। अतः तू योगी नहीं बन सकता, इसलिये कर्मकाण्डो [दुनियादार] ही बना रह अर्थात युद्ध से पृथक मत हो।

नहीं बन सकते, वे कर्मकाण्डी ही बने रहें, यह उपदेश यहां करते हैं...

अर्थ----देवताओं को (अपने यज्ञ कर्मों से) प्रसन्न करोगे तो वे खुश हो कर तुम्हारा कल्याण करेंगे। इस प्रकार एक दूसरे को प्रसन्न करते हुए परम कल्यण को प्राप्त कर लोगे ।(१)

यज्ञशिष्टाशिनःसन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्म कारणात् ॥ १८ ॥
(भ० गी० ३ । १३)

सङ्गति---यज्ञ(२) ही से देवता प्रसन्न हुआ करते हैं, इसलिये यज्ञ की महिमा सुनो···

अर्थ---यज्ञ से बचे हुए पदार्थों को खाने वाला सन्त सब पापों से छूट जाता है। परन्तु जो लोग केवल अपने लिये ही भोजन पकाते हैं वे मानों अपने पापों को खा रहे हैं ।(३)

---

(१) अर्जुन को यह संकेत करते हैं कि युद्धरूपी क्षात्र—धर्म [कर्म] द्वारा रुद्र भगवान को प्रसन्न करना ही उस समय परम कर्तव्य था।

(२) यज्ञो वै विष्णुः (शतपथ)

(३) मनुस्मृति तथा शतपथ ब्राह्मण में पांच महायज्ञ प्रति दिन करने का विधान है, अतः १ संध्या कर के २ हवन कर के, ३ बलि वैश्व द्वारा कुत्ते आदि का भाग देकर, ४ पितरों को खिला कर, ५ अतिथि अभ्यागतों को भोजन करा लेने के पश्चात् गृहस्थी स्वयं भोजन करे. ऐसा न करने वाले पापी होंगे।

अर्जुन को आदेश देते हैं कि युद्ध कर के राज्य प्राप्त कर-लेवें तो खूब दान, पुण्य, यज्ञ हवनादि कर सकेगा।

श्रेयान् स्वधर्मोविगुणः पर धर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावहः ॥ १६ ॥

(भ० गी० ३ । ३५)

सङ्गति---यज्ञों का अनुष्ठान धर्मात्मा लोग ही कर सकते हैं, इसलिये धर्म का विवरण सुनो...

अर्थ---अपना धर्म खराब प्रतीत होता हो, तौ भी दूसरे के धर्म को बहुत उत्तम प्रकार पालन करने से भी वह श्रेष्ठ ही है। अपने धर्म में मरना भला है, किन्तु दूसरे का धर्म अपने को भयदायक ही है।(१)

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि नत्वंवेत्थ परंतप ॥ २० ॥

(भ० गी० ४ । ५)

सङ्गति—पूर्व में जो धर्म का महत्व कहा है, उस पर कोई यह शंका करे कि धर्म करने में कष्ट उठाना वृथा है क्योंकि कई

---

(१) "यहां वर्णाश्रम धर्म से अभिप्राय है। ब्राह्मण का धर्म पढ़ना पढ़ाना आदि है. तथा क्षत्रिय का दुष्टों को मार कर धर्मात्माओं की रक्षा करना। यहां अर्जुन को कहा गया है कि तू क्षत्रिय है, युद्ध करना तेरा धर्म है, उसे छोड़ कर जो तू भागा जाता है यह तेरी भारी भूल है। अरे क्षात्र धर्म कितना ही खराब क्यों न हो, पर वह तेरे लिये तो अच्छा ही है।" कई लोग "धर्म" से मत मतान्तरों तथा मजहबों का तात्पर्य लेते हैं पर वह आशय यहां नहीं है। कृष्णार्जुन संवाद के समय तक संसार भर में केवल एक वैदिक धर्म था, ये "मजहब" तो पीछे चले हैं।

धर्मात्मा लोग दुःखी देखे जाते हैं ? तो इस के उत्तर में यहाँ आवागमन का उपदेश करते है कि वे दुःखी तो पूर्व जन्मों के कर्म फलों से होते हैं परन्तु अब जो धर्म करते हैं उसके फल में अगले जन्मों में सुख पायेंगे ।

अर्थ—हे अर्जुन ! मेरे और तेरे भी बहुतेरे जन्म बीत चुके हैं, किन्तु मैं उन सब (जन्मों के हालत) को जानता(१) हूं, परन्तु हे परन्तप ! तुम नहीं जानते ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥ २१ ॥
(भ० गी० ४ । ७, ८)

सङ्गति—अब यह बतलाते हैं कि किन दशाओं में श्री कृष्ण जी या ऐसे महान योगी लोग संसार में आ कर जन्म लेते हैं ।

अर्थ—हे भारत ! जब जब धर्म की (संसार में) कमी और अधर्म की ज्यादती हो जाती है, तब तब मैं साधुओंकी रक्षा करने और दुष्टों को नाश करने के लिये अपने को सृजता हूं ।(२)

(१) श्रीकृष्ण जी अपने पूर्व जन्मों को क्यों कर जानते थे ? इसका उत्तर यह है कि वे योगी थे और योगबल से सब कुछ प्रत्यक्ष हो जाता है ।

(२) "अपने को सृजता हूं" यह वाक्य श्रीकृष्णजी का है, जिसका अभिप्राय यह होता है कि श्रीकृष्ण जी महाराज अपने योग बल से जब उचित समझते हैं तब मानुषी शरीर धारण कर लेते हैं ।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्म फलेस्पृहा ॥ २२ ॥

(भ० गी ४ । ६, १४)

सङ्गति—योगी लोगों के जन्म और कर्म कैसे होते हैं? यह बात श्रीकृष्ण जी अपने निजदृष्टान्त से प्रकट करते हैं—

अर्थ—मेरा (या मेरे जैसे योगियों का) जन्म और कर्म दिव्य (अदभुत प्रकार का) है (क्यों कि) न तो कर्म(१) मुझमें (योगी होने से) लिपटते हैं, और न मैं (परम ज्ञानी होने से) उन, में फंसता हूं । इस बात को जो कोई ठीक ठीक जान लेता है वह देह त्यागने पर पुनर्जन्म को नहीं पाता किन्तु हे अर्जुन! वह मुझ (परमात्मा) को पा जाता है ।(२)

अवतारवादी महाशय गण इसी श्लोक का प्रमाण अपने पुष्टि में लगाते हैं, परन्तु यहां परमेश्वर के शरीरधारी बनने की कोई बात नहीं कही गई ।

(१) इस पर यह श्रुति है :—

,"आप्त कामस्य स्पृहा, अर्थात् जो आत्मज्ञानी हैं उनको कुछ भी किसी काम के फल से प्रयोजन नहीं है ।

(२) "मुझ से अभिप्राय "ब्रह्म परमात्मा" से है । श्रीकृष्ण जी ने परमात्मा के स्थान में अपने को क्यों कहा ? इसका उत्तर यह है कि श्री कृष्ण जी परम योगी थे, इस कारण वे परब्रह्म परमात्मा में इतने लवलीन थे कि अपने को उस से भिन्न नहीं देखते थे । ऐसे पूर्ण योगी महात्मा गण इसी प्रकार बोला करते हैं, इसका प्राचीन प्रमाण भी मिलता है—बृहदारण्यक उप-

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान मनुष्येषु सयुक्तः कृत्स्न कर्मकृत् ॥२३॥
(भ० गी० ४ । १८)

सङ्गति---ऐसा कर्म से निस्पृह कैसे बन सकता है ? यह बात यहां बतलाते हैं ।

अर्थ---जो कोई कर्म में अकर्मको और अकर्ममें कर्म को देखता

निषद् में आया है कि वामदेव ऋषि ने कहा था कि सूर्य में जो पुरुष प्रकाश दे रहा है वह मैं हूं—"तद्धैतत् पश्यन्नृषिर्वाम देवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूर्यश्चेति तदिदमप्येतर्हि य एवं वेदाह ब्रह्मास्मीति ।
(बृहदारण्यक उ० १ । ४ । १०)

श्री लोकमान्य तिलक महाराज ने अपने गीता रहस्य के नवें प्रकरण में पृष्ठ २३२ पर लिखा है कि :—" व्यक्त अथवा अव्यक्त सगुण ब्रह्म की उपासना से ध्याय के द्वारा धीरे धीरे बढ़ता हुआ उपासक अन्तमें अहंब्रह्मास्मि बृ० १ । ४ । १० "मै ही ब्रह्म हूं" की स्थिति में जा पहुंचता है, और ब्रह्मात्मैक्य स्थिति का उसे साक्षात्कार होने लगता है. फिर उसमें वह इतना मग्न हो जाता है कि इस बात की ओर उसका ध्यान भी नहीं जाता कि मै किस स्थिति में हूं अथवा किस का अनुभव कर रहा हूं । (यह समाधि योग है" जिस में) द्वैत का ज़रा सा भी लव लेश नहीं रहता।

पाठकों को ज्ञात होकि योगीराज श्री कृष्ण जी की ऐसी ही स्थिति थी जिस का दिग्दर्शन तिलक महाराज के ऊपरी वाक्य में कराया गया है। अतः जहां जहां "परमेश्वर की उपासना करो" कहना उचित था, वहां वहां कृष्ण जी ने "मेरी उपासना करो"—कहा है—इसका अभिप्राय यही है कि मैं जिस ब्रह्म परमात्मा का प्रतिनिधि हूं उसकी उपासना करो।

(१) है, वही मनुष्यों में बुद्धिमान् है, वही योगी है, और कर्मों को (यथार्थतया) करने वाला भी वही है (२) ?

यदृच्छा लाभ सन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च, कृत्वापि न निबद्धचते ॥२४॥
(भ० गी० ४ । २२)

सङ्गति---अब ऊपरी उपदेश पर अमल करने का साधन बतलाते हैं ।

अर्थ---यदृच्छा (दैव से, अनायास ही) जो कुछ मिल जाय, उसी से सन्तुष्ट हो जाने वाला, द्वन्द्व (जाड़ा, गरमी, हर्ष, शोक, सुःख, दुःख आदि) से मुक्त रहने वाला, और सफलता असफलता को एक समान मानने वाला (ज्ञानी पुरुष) कर्मों को करने पर भी (उन) के पाप पुण्य में नहीं-फंसता (३) ।

(१) इस पर श्रुति यह है :—"जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यंनह्यध्रुवैः प्राप्यतेहि ध्रुवंतत्, ततो मया नाचिकेत श्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥ कठो० २ । १०

(२) अकर्म का तात्पर्य ज्ञान है। कर्मकाण्डी और ज्ञानकाण्डी का परस्पर भारी विरोध जारी था, श्री कृष्ण जी ने उसको बड़े उत्तम प्रकार से खिवारण कर दिया है। वे कर्म और ज्ञान का मेल कराते हैं—कर्म करनेवाला अगर निष्काम कर्मी बन जाय तो कर्म उसे न फांसेगे और ज्ञानी अगर परोपकार निमित्त संसार के कार्यों को निस्पृह रूप से चलाता रहेगा तो उसके ज्ञान में कोई त्रुटि न होगी, यही आशय श्री कृष्ण जी का है।

(३) अर्जुन को यह सब सुनाने का यह अभिप्राय है कि वह ज्ञानी बनना चाहे या कर्मकाण्डी, हर हालत में उसको युद्ध करना ही चाहिये ।

द्रव्य यज्ञास्तपोयज्ञा योग यज्ञास्तथाऽपरे ।
स्वाध्यायज्ञान यज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २५ ॥
(भ० गी० ४ । २८)

सङ्गति—उसी बात को और पुष्ट करते हैं ।

अर्थ—ऐसे (उक्त प्रकार से) यती लोग जो तीक्ष्ण व्रतों को धारण करते हैं (अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं, जैसे) कोई द्रव्य-यज्ञ (हवन, यज्ञ, दान, पुण्य) करते हैं कोई तप-यज्ञ (संसार की भलाई के लिये अपने ऊपर कष्ट(१) उठाने का कार्य) करते हैं, और दूसरे कोई लोग स्वाध्याय या ज्ञान-यज्ञ(२) में लग जाते हैं (३) ।

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परि समाप्यते ।
तद्विद्धि प्रणिपातेन परि प्रश्नेन सेवया ॥ २६ ॥
(भ० गी० ४ । ३३, ३४)

---

[१] जैसे वर्तमान समय में स्वर्गवासी लोकमान्य पं० बालगंगातिलक महाराज तथा महात्मा कर्मचन्द मोहन दास गांधी महाराज अन्यों की भलाई के लिये बार बार जेल को चले गये ।

(२) ज्ञानयज्ञ कौन से हैं ? पढ़ना पढ़ाना, धर्म चर्चा करना, सत्संग, कथा वार्ता, व्याख्यान आदि आदि ज्ञान यज्ञ में ही सामिल हैं। एकान्त सेवन ब्रह्मचिन्तन आदि ज्ञान रूपी महल की ऊंची अटारी है।

[३] अर्जुन किस यज्ञ में प्रवृत्त हो ? वह "तप यज्ञ" करे अर्थात धर्मात्माओं के सिर ताज युधिष्ठिर महाराज को रक्षा के लिये दुष्ट दुर्योधनादि को वध करे । ऐसा करने में अगर अपना गला भी कटाना पड़े तो निस्सन्देह कटा देवे

सङ्गति—उन व्रतों की समाप्ति कहां होती है, सुनो...

अर्थ—हे पार्थ! सब प्रकार के कर्मों (उक्त व्रतों) की समाप्ति ज्ञान में आकर हो जाती है। उस ज्ञान को पाने के लिये ज्ञानी गुरु लोगों को प्रणाम करो और सेवा करके प्रसन्न कर लो तब प्रश्न(१)करो तो उस ज्ञान को पाओगे (२)।

संन्यासः कर्म योगश्च निःश्रेयस करावुभौ ।
तयोस्तु कर्म संन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २७ ॥
(भ० गी० ५ । २)

सङ्गति—अगर यह शंका हो कि कभी कर्म और कभी ज्ञान को बढ़ा कर (३) कहा है, फिर किस को श्रेष्ठ माना जाय ? तो उत्तर यह हैं...

अर्थ—संन्यास (४) और कर्म ये दोनों ही कल्याण देने

---

[१] इस पर श्रुति यह है :—"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ (मुण्डको० २ । २ । १२)

[२] अर्जुन ने परम ज्ञानी श्री कृष्ण जीको प्रणाम करके श्रद्धापूर्वक प्रश्न किया था, अतः गीता रूपी इस ज्ञानामृत का उपदेश प्राप्त किया। श्री कृष्ण जी का अर्जुन को यहां यह उपदेश है, कि वह क्षात्र धर्म पालन करता हुआ पृथ्वी के भार रूपी दुष्टों पापियों को छिन्नभिन्न कर देवे, तो वेदपाठी ब्राह्मण, तत्वदर्शी ज्ञानी तथा धर्मात्मा तपस्वी लोग अपने अपने कर्मों में लग जांय, बस फिर संसार में सर्वत्र ज्ञान यज्ञ ही होने लग जाय।

(३) कर्म (यज्ञ) का महत्व ऊपर १६, १७ वें श्लोक में कहा है और ज्ञान का महत्व २२, २५ वें में आया है।

(४) संन्यास का आशय वेदान्त ग्रन्थों में ब्रह्मज्ञान का है। "ज्ञानी"

वाले हैं (परन्तु) उन दोनों में कर्म संन्यास से बढ़ कर है (१) ।

योग युक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधि गच्छति ।
सर्व भूतात्म भूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ २८ ॥

(भ० गी० ५ । ६, ७)

सङ्गति—दोनों कैसे कल्याणदायक होंगे? यह बतलाते हैं ।

अर्थ---(ज्ञान) योग से युक्त मुनि ब्रह्म को बहुत जल्दी पा जाता है (क्योंकि) उस (मुनि) को दृष्टि ऐसी हो जाती है कि वह सब भूतों (प्राणियों) के आत्मा में उस "भूतात्मा" (सब वस्तुओं में व्यापक परमात्मा) को देखता रहता है अतः वह (ज्ञानी) काम करने पर भी उसमें नहीं फंसता [२] ।

वह माना जाता है जिसके मन में हरवक्त ब्रह्म ही का चिन्तन होता रहे ।

(१) यद्यपि वस्तुतः तो ज्ञान (कर्म संन्यास) ही श्रेष्ठ और अन्तिम साध्य है, परन्तु कर्म काण्ड (कर्म योग) को बड़ाई यहां श्रद्धा उपजाने के लिये करते हैं क्योंकि साधारण वर्ग के लोगों को तो प्रथम कर्म में ही प्रवृत्त होना चाहिये, नहीं तो वे भ्रष्ट हो जायंगे । अतः श्री कृष्ण जी उन साधारण लोगों को समझाते हैं कि 'तुम्हारा कल्याण इसी में है कि तुम कर्म को ज्ञान से बढ़कर मान लो तो उस में तुम्हारी श्रद्धा होगी फिर कर्म करते करते आप ही समय पर ज्ञान के अधिकारी बन जावगे इत्यादि ।

[२] कर्म में फसना (लिप्त होना) यह है कि पाप पुण्य करने पर उनके फल में दुख सुख भोगना । ज्ञानी पाप पुण्य करने पर भी सुख दुःख में नहीं फंसता, क्योंकि जो वस्तुतः ज्ञानी होगा उसका मन ब्रह्म के ध्यान में इतना लवलीन रहता होगा कि उसको सुख दुखों का भान तक न होगा । इस पर श्रुति यह है:—"तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ २९ ॥
(भ० गी० ६ । ५)

सङ्गति—ऐसा उत्तम जो ज्ञान है, उसके प्राप्ति का अब साधन बतलाते हैं।

अर्थ—आत्मा से आत्मा को ऊंचा उठावे, किन्तु आत्मा को नीचे न गिरने देवे (क्योंकि) आत्मा ही अपना मित्र है और वह स्वयं ही अपना शत्रु है [१]।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यत चित्तात्मा निराशीर परिग्रहः ॥ ३० ॥
(भ० गी० ६ । १०)

संगति—आत्मा को ऊंचे दरजे पर उठाने में सफलता कैसे प्राप्त हो यह बतलाते हैं...

अर्थ—योगी (परमात्मा से मिलने की इच्छा वाला ज्ञानी पुरुष) अकेला रहता हुआ, गुप्त स्थान में निवास करता हुआ; विषयों से बचता हुआ, परिग्रह (दूसरों से सहायता) न लेता

शाश्वती नेतरेषाम् (कठो० ५ । १२)

(१) प्रत्येक मनुष्य अपने को अच्छे कामों में लगा कर अपने आत्मा को उन्नत बना सकता है। पाप कर्मों से आत्मा नीचे गिरेगी, अतः उससे बचा रहे। अर्जुन से कहते हैं कि अगर तू अपने आत्मा को उन्नत बनाना चाहता है तो युद्ध से मुंह मत मोड़ क्योंकि क्षत्रिय की आत्मा ऐसा करने से गिर जाती है। तू अपने आत्माको गिरने न दे किन्तु ऊंचा उठा।

हुआ, आत्मा (परब्रह्म परमात्मा) के साथ जुट जावे (मेल मिलाप कर लेवे) ।

समंकाय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नाशिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।
यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ॥ ३१ ॥

(भ० गी० ६ । १३; १९)

संगति—परमात्मा के साथ मिलाप होने का और भी उपाय बतलाते हैं...

अर्थ—(वह योगी ऐसा आसन लगाकर योग करने के लिये बैठे कि) सारा शरीर और गला सीधा रहे, हिलने डोलने न पावे (बल्कि) बिलकुल स्थिर रहे । और अन्य किसी भी दिशा को ओर न देखता हुआ केवल अपने नासिका के अगले भाग को देखता हुआ, (ओ३म् का जप और प्रणायाम करता रहे) वह शरीर को ऐसा अचल रखे जैसे दीपक की ज्योति हवा न चलने पर स्थिर रहा करती है ।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥

(भ० गी० ६ । ३२)

संगति—उससे भी और श्रेष्ठ उपाय परमात्मा को जल्दी पा जाने का बतलाते हैं...

अर्थ—हे अर्जुन ! जो कोई अपने उपमा से सब जगह सब

लोगों को (अपने ही) समान सुखी दुखी (१) देखता है वह परम योगी माना जाता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३३ ॥
(भ० गी० ६ । ३०)

सङ्गति—और भी सर्वश्रेष्ठ उपाय परमात्मा की प्राप्ति का बतलाते हैं :—

अर्थ—जो कोई (योगी या भक्त) मुझ (परमात्मा) को सब जगह और सबको मुझमें देखता(२) है उसको मैं (परमात्मा) नहीं नाश(३)करता हूं, और न वह मुझको नष्ट(४)करता है(५)।

---

(१) अर्थात् यह समझता है कि जैसे मैं दुःख नहीं पसन्द करता, उसी प्रकार अन्य लोग भी नहीं पसन्द करते, अतः जैसे मैं अपने दुःखोंको दूर हटानेका यत्न करता रहता हूं, इसी प्रकार मेरा कर्तव्य है कि दूसरों के दुःख निवारणार्थ भी पुरुषार्थ करता रहूं। ऐसे परोपकारी योगी से परमात्मा अवश्य प्रसन्न होंगे। अर्जुन भी परोपकारी धर्मात्मा युधिष्ठिर की रक्षा निमित्त युद्ध करे तो वह परम योगी माना जा सकेगा, यह अभिप्राय श्रीकृष्णजीका है।

(२) अर्थात् परमात्मा को सर्व व्यापक देखता है।

(३) नाश तो जीवात्मा का होता ही नहीं क्योंकि वह अजर, अमर, है; परन्तु यहां 'नाश" से अभिप्राय पतित होने, गिरने, या नरकगामी होनेका है।

(४) परमेश्वर को नष्ट करना यह है कि उसको भूल जाना तथा उसकी आज्ञा के विरुद्ध काम करना।

(५) इस पर श्रुति यह है :—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानु पश्यतिसर्वं भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते,
(ईशो० ७ । या यजुः ४० । ७)

भूमि रापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धि रेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृति रष्टधा॥
अहंकृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥ ३४॥
(भ० गी० ७। ४, ६)

संगति—अब परमात्मा में श्रद्धा उपजाने के लिये उसकी महिमा वर्णन करते हैं—

अर्थ—मेरी (परमात्मा की आठ प्रकार की भिन्न भिन्न प्रकृतियां (शक्तियां) हैं उनके नाम सुनोः—

—"१ भूमि २ जल ३ अग्नि ४ वायु ५ आकाश ६ मन ७ बुद्धि ८ अहंकार—" (१)

मैं (परमेश्वर) ही इस सारे (उक्त आठ प्रकृतियों वाले) जगत की रचना और प्रलय करने वाला हूं।

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ ३५॥
(भ० गी० ७। ७)

संगति—परमात्मा का और भी महत्व दर्शाते हैं—

अर्थ—हे धनञ्जय! मुझ (परमात्मा) से बढ़कर और कोई भी नहीं है।(२) (मुझमें ही) यह सब सूत में मणियों की भाँति

(१) इस पर यह श्रुति है:—"एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथ्वी विश्वस्य धारिणी॥ (मुण्डक उ० २।१।३)

(२) इस पर श्रुति यह है—"तदु नात्येति कश्चन" (कठ. ४।९)

(पिरोया हुआ है) । (१)

रसोऽहमप्सु कौन्तेय ! प्रभाऽस्मि शशि सूर्ययोः ।
प्रणवः सर्व वेदेषु शब्दः खे पौरुषंनृषु ॥ ३६ ॥

(भ० गी० ७ । ८)

संगति—किस प्रकार पिरोया हैं सुनो—

अर्थ—हे कौन्तेय ! मैं पानी में रस (रूप से मौजूद हूं) । चन्द्र सूर्य में प्रभा (किरण या प्रकाश) हूं । सब वेदों में प्रणव (ओ३म्) हूं । आकाश में शब्द हूं और मनुष्यों में पुरुषार्थ हूं(२)।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चापि विभावसौ ।
जीवनं सर्व भूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ३७ ॥

(भ० गी० ७ । ९)

अर्थ—पृथिवी में मैं उत्तम सुगन्ध हूं, अग्नि में तेज (रूप से विद्यमान) हूं । सब भूतों (प्राणियों) में जीवन हूं । और तपस्वियों में तप (रूप से विराजमान हो रहा) हूं ।

बुद्धिर्बुद्धि मतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।

---

(१) इस श्लोक का एक पाद मूल में नहीं है वर्तमान गीता में "मयिसर्वमिदं प्रोक्तं" है अर्थ इसका मैंने कोष्ठक में रख दिया है क्योंकि विना इसके आशय नहीं खुलता ।

(२) अर्थात् प्रत्येक वस्तु का जो सारांश तत्व या जौहर है उसीको परमात्मा की सत्ता समझो ।

बलंबलवतां चाहम्(१) काम रागविवर्जितम् (२)॥ ३८ ॥

(भ० गी० ७ । १०, ११)

अर्थ— बुद्धि वालों में बुद्धि, तेज वालोंमें तेज और बल वालों में काम और राग से रहित बल मैं ही हूं ।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः (३) ॥ ३९ ॥

(भ० गी० ७ । १६, १९)

सङ्गति—ऐसे महान् प्रभु परमात्मा को कौन लोग स्मरण करते हैं ? सुनो—

अर्थ—हे अर्जुन ! चार प्रकार के सुकृति (धर्मात्मा) लोग मुझ (परमेश्वर) को भजते हैं । १ आर्त (दुःखी,) २ जिज्ञासु (ब्रह्मको जानने को इच्छा वाले), ३ अर्थी (कामना वाला-ख्वाहिशमन्द) और हे भरतर्षभ ! चौथा ज्ञानी । फिर उन सबमें कौन बढ़ कर है ? वह पूर्ण ज्ञानी महात्मा, जो यह समझ लेवे कि सबकुछ(४)

---

(१) "चाहम्" के स्थान में वर्तमान गीता का पाठ "चास्मि" है ।

(२) यह अन्तिम पाद मूल में नहीं है, वर्तमान गीता से मैंने उद्धृत कर दिया है ।

(३) यह पाद मूल में नहीं है, मैंने वर्तमान गीता से उद्धृत कर दिया है ।

(४) सब ब्रह्म है"और "सब में ब्रह्म है... ये दो पक्ष अद्वैत और द्वैत वादियों के हैं । द्वैतवादी ऐसा मानते हैं कि ब्रह्म को सब में व्यापक देखतां देखता सबको ब्रह्म ही मानने लग जाता है । देखो श्लोक सं० ५५ की टिप्पिणी ।

वासुदेव (१) (परमात्मा) ही है ।

जरा मरण मोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ ४० ॥
(भ० गी० ७ । २९)

सङ्गति—फिर उस महात्मा का आगे का कार्य बतलाते हैं—

अर्थ—जो लोग जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु से छूट जाने (मुक्तिपाने) के लिये मेरा (परमात्मा का (सहारा लेकर यत्न करते हैं, वे उस ब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्म ज्ञान को और सब कर्मों को जान (२) लेते हैं ।

अन्त काले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ४१ ॥
(भ० गी० ८ । ५)

---

(१) इस शब्द का समास इस प्रकार है :—

"वासयति छादयति स्व प्रकाशेन इति वासः । स्वप्रकाशेन दीव्यतीति देवः । स चासौ देवश्च वासुदेवः ।

भावार्थ—जो अपने प्रकाश से ढांकता है वह 'वासु" कहलाता है । और जो अपने प्रकाश से चमकता है वह 'देव" कहलाता है, इस प्रकार वासुदेव शब्द परत्मा वाचक आया है ।

(२) जान लेने से अभिप्राय साक्षात्कार कर लेने का है । जिस प्रकार हम लोग मिठाई को जिह्वा पर रखते ही उसके स्वाद का अनुभव (साक्षात्कार) करते हैं, उसी प्रकार जो लोग ब्रह्म परमात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे होंगे वे ही ब्रह्मको जान लेनेवाले कहे जांयगे । अर्जुन यह सब जान कर क्या करें ?

सङ्गति—फिर वह महात्मा मुक्ति को कैसे पा सकता है ? यह बतलाते हैं ।

अर्थ—जो कोई अन्त काल (मरते समय) मेरा (परमात्मा ही का) स्मरण करता हुआ शरीर को छोड़ जाता है, वह मेरे भाव (मुक्ति धाम) को पा जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है (१) ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।

मय्यर्पित मनो बुद्धिर्मामेवैष्यस्य संशयम् ॥ ४२ ॥

(भ० गी० ८। ७)

सङ्गति—अतः वह उपाय बतलाते हैं कि मरते समय ईश्वर में मन लगा रहे :——

अर्थ—इसी लिये सब काल मे (२)मुझ (परमात्मा) में मन

अर्जुन परमात्मा को अपना मालिक प्रभु मानता हुआ उसको सर्व व्यापक देखने लग जाय तो यह भेद समझ पायेगा कि कुरुक्षेत्र के संग्राम भूमि में उसको उसके प्रभु ने ला खड़ा किया था, अतः युद्ध से पीछे हट जानो प्रभु की आज्ञा को उल्लंघन करना ही था ।

(१) इस पर यह श्रुति हैः—"वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयः शुद्ध सत्वाः, ते ब्रह्म लोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ (मु० उप० ३ । ६)

(२) क्योंकि मरते समय तभी प्रभुकी याद आयेगी जब जन्म भर उसका मनन करता रहेगा ।

और बुद्धि को अर्पित(१) कर के मुझ को ही स्मरण करता हुआ युद्ध करे तो (२) निस्सन्देह मुझको ही पा जायगा (मुक्ति प्राप्त कर लेगा)।

सर्व द्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योग धारणाम्॥ ४३॥
(भ० गी० ८। १२)

सङ्गति—कैसे स्मरण करे? सुनोः—

अर्थ—सब द्वारों (आंख कान···आदि) को संयम करके, मन को हृदय में रोक कर अपने प्राणों को मूर्द्धा (शिर) में चढ़ा कर योगाभ्यास में लग जाय(३)।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञान सहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥४४॥
(भ० गी० ९। १)

---

(१) कैसे अर्पण करें? मनमें सिवाय ब्रह्म के और किसी का मनन न करे और न बुद्धि से किसी अन्य का चिन्तन करे, यह कार्य अत्यन्त कठिन तो है पर अभ्यास से सुलभ होगा।

(२) यहां स्पष्ट ही अर्जुन को कह दिया गया है कि वह परमात्मा को पाना (मुक्ति धाम को जाना चाहता हो, तो भगवान का भजन करता हुआ ही युद्ध में लगा रहे। कैसे? यह बाण में, धनुष में, लक्ष्य में, तथा अपने भीतर बाहर सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म को व्यापक देखता रहे और यह मानकर युद्ध में डटा रहे कि मुझ मेरे प्रभु परमात्मा ने इस कार्य में लगा रक्खा है।

(३) उस दशा में आत्मा से परमात्मा का ध्यान तथा उसके ओ३म्

सङ्गति—अब उससे और बढ़िया अधिक ज्ञान सुनाने की प्रतिज्ञा करते हैं:—

अर्थ—हे निष्पाप अर्जुन ! तुझ को हम अब इससे भी और उत्कृष्ट ज्ञान, जो विज्ञान के सहित है, सुनाते हैं; जिस को जान करके तू अशुभ बातों से छूट जायगा (१)।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥
वेद्यं पवित्रोङ्कार ऋक् साम यजुरेवच ॥ ४५ ॥

(भ० गी० ९ । १६ ।१७)

सङ्गति—वह ज्ञान यह है कि:---

अर्थ—मैं(परमात्मा) यज्ञ हूं, मैं ही क्रतु (२) हूं, मैं ही स्वाधा(३) हूं, मै ही औषधि (हवन सामग्री) हूं, मैं ही मन्त्र हूं, मैं ही आज्य (घृत) हूं, मैं ही (यज्ञ की) अग्नि हूं, और यज्ञ में आहुत हुआ सामान (भी) मैं ही हूं (४) मैं ही जानने योग्य पवित्र

नाम का जप करे । इस पर यह श्रुति है:—

"य: पुनेरतत् त्रिमात्रमित्यनेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तमधिगच्छति ॥

(१) वह परम ज्ञान परब्रह्म परमात्मा को सर्वत्र व्यापक देखनेका अभ्यास करना ही है, अतः अगले श्लोक को पाठक ध्यान से पढ़ें।

(२) क्रतु से बड़े बड़े यज्ञ अश्व मेधादि से अभिप्राय है ।

(३) स्वाधा—पितरों सम्बन्धी यज्ञ-सामग्री ।

(४) अभिप्राय यह है कि सब वस्तु में परमात्मा को व्यापक देखो, यहाँ

ओङ्कार (१) हूं, और मैं ही ऋक् साम यजुर्वेद(२)भी हूं।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ ४६॥

(भ० गी० ९। २७)

सङ्गति---जो इस प्रकार ब्रह्म परमात्मा को सर्वत्र व्यापक जान ले तो फिर वह क्या करे,सुनोः---

अर्थ---हे कौन्तेय! जो कार्य तू करे, जो कुछ खाय, जो कुछ होम करे, जो कुछ दान करे. और जो कुछ तपस्या करे, वह सब (उन पुण्य कार्यों का फल) मुझ (परमात्मा) को अर्पण कर दे(३)।

ज्योतिषां महमंशुमान् *, नक्षत्राणामहंशशि॥ ४७॥

(भ० गी० १०। २१)

तक कि परमात्मा से पृथक कुछ भान हो न हो। इतना अधिक परमात्मा में लवलीन होकर उसी में तन्मय हो जाना हो ऐसा ज्ञान है जो उत्तम है। और पूर्व श्लोक में इसी के खास उपदेश देने का वादा किया गया था।

[१] इस पर यह श्रुति है:—

"ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं।" (मु० ४। ६)

(२) "तस्मादृचः साम यजूंषि" (मुण्डक उ० २। ६)

(३) अर्थात् निष्काम भाव से कर्म करता रहे। कर्म का फल परमात्मा को अर्पण कर देने से यह परिणाम होगा कि उनसे होने वाले सांसारिक सुख न मिलेंगे, किन्तु मुक्ति से निकटता होती जायगी।

* वर्तमान गीता में इस "अहम्" के स्थान में "रवि" पाठ है।

सङ्गति--पूर्व श्लोक सं० ४५ में जो अपूर्व ज्ञान परमात्माका सर्व व्यापक होना कहा है, उसी की व्याख्या यहाँ से श्लोक संख्या ५३ तक में करते हैं । अर्थात् यह बतलाते हैं कि परमात्मा को किस वस्तु में किस रूप से देखे !

अर्थ---ज्योति (प्रकाश) वालों में मैं किरणोंवाला (सूर्य) हूं । नक्षत्रों में मैं चन्द्रमा हूं ।

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्ष रक्षसाम् ।
महर्षीणां भृगुरहं, मेरुः शिखरिणामहम् ॥ ४८ ॥
(भ० गी० १० । २३,२५)

अर्थ---रुद्रों में मैं शंकर हूं, यक्ष राक्षसों में मै कुवेर हूं । महर्षियो में मैं भृगु हूं । और शिखरवालो में मैं मेरु पर्वत हूं ।

अश्वत्थः सर्व वृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
उच्चैः श्रवमश्वानां सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ ४९ ॥
(भ० गी० १० । २६, २७)

अर्थ---सब वृक्षों में मैं पीपल हूं, देवऋषियों में मैं नारद हूं । घोड़ों में मैं उच्चैःश्रवा (ऊंचे कानों वाला घोड़ा हूं । सिद्ध लोगो में मैं कपिल मुनि हूं ।

ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ।
आयुधानामहं वज्रं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ ५० ॥
(भ० गी० १० । २७, २८)

अर्थ...हाथियों में मैं ऐरावत हूं, मनुष्यों में मैं राजा हूं । आयुधों (शस्त्रों) में मैं वज्र हूं, और सर्पो में मैं वासुकी हूं ।

वरुणो यादसामहम्, यमः संयमतामहम् ।
प्रह्लादः* सर्व दैत्यानां कालः कलयतामहम्* ॥ ५१ ॥
(भ० गी० १० । २९, ३०)

अर्थ...पानी के जीवों में मैं वरुण हूं, नियमन (न्याय) करने वालों में मैं यम हूं । सब दैत्यों में मैं प्रह्लाद हूं, गणना करने वालों में मै काल हूं ।

मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥
अक्षराणामकारोऽस्मि रामः शस्त्र भृतामहम् ।
मासानां मार्ग शीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ५२ ॥
(भ० गी० १०।३०,३१,३३,३५)

अर्थ---वन पशुओं में मैं सिंह हूं । पक्षियों में मैं गरुड़ हूं अक्षरों में मैं " अ " हूं । शस्त्रधारियों में मै राम हूं । महीनों में मैं मार्गशीर्ष (अगहन) तथा ऋतुओं में वसन्त हूं ।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ ५३ ॥
(भ० गी० १० ३७)

अर्थ---वृष्णी वंशवालों में मैं वासुदेव (श्री कृष्ण) हूं । पाण्डवों में मैं अर्जुन हूं । मुनियों में मैं व्यास हूं । और कवियों

* यह चौथा पाद मूल में नहीं है, मैंने वर्तमान गीता से उद्धृत कर दिया है ।

* वर्तमान गीता में "प्रह्लादश्चास्मि" पाठ है ।

में मैं उशना कवि हूं।

"औपधिनाम् (१)"।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ॥ ५४ ॥

(भ० गी० १०। ४०)

अर्थ—हे बड़े तपस्वी अर्जुन! (निदान कहां तक गिनायें, वस्तुतः तो) मेरे (परमात्मा के) इन दिव्य विभूतियों का अन्त ही नहीं है (२)।

---

[१] यह एक ही शब्द है, अर्थ "औपधियोंका" होगा। वर्तमान गीतामें यह शब्द कहीं भी नहीं है।

[२] परमात्मा अनन्त हैं, उन की विभूतियां भी अनन्त ही हैं। यहां जो थोड़ी सी दिग्दर्शन कराई गई, इतने से जिज्ञासु और अनेक विभूतियों को समझ सकता है कि सर्वत्र प्रत्येक वस्तु में, जर्रे जर्रे में, परमात्माको ही रमा हुआ देखकर सर्वत्र उसको नमस्कार करे। यजुर्वेद की १६ वें अध्याय में यही उपदेश है कि प्रत्येक वस्तु में परमात्मा को नमस्कार करे। परमात्मा के सब में व्यापक होने की व्याख्या बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्तर्यामी ब्राह्मण में अति उत्तम आई है जिसका एक मन्त्र निम्न प्रकार है :—

"यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥

(बृह० उ० ३। ७। ३)

इसी प्रसंग में श्रीमान् कन्नोमल जी एम० ए० अपने गीतादर्शन पृ० ७२ पर कहते हैं :—

"पिक और कोकिला के मधुर गान में वही है, पुष्प वाटिका की सुगंधि वही है। नव यौवना के सुन्दर रूप में उसी की झलक है। मेघ के प्रचण्ड

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नाना विधानि दिव्यानि नाना वर्णाकृतीनि च ॥ ५५ ॥
(भ० गी० ११ । ५)

संगति—जो परमात्मा को उक्त प्रकार सब में व्यापक देखने का अभ्यासी हो जाय, उसके लिए और आगे का मार्ग दर्शाते हैं ;—

अर्थ—हे अर्जुन ! (मेरी विभूतियों को समझ लेने पर अब) तू मेरे (परमात्मा के) अनेक प्रकार के अनेक रंगों और आकारों वाले सैकड़ों हज़ारों दिव्य रूपों को देख (१) ।

गर्जनमें उसीका शब्द है । नक्षत्रों की ज्योति वही है । अन्तःकरणको शान्त वाणि में वही बोलता है । समुद्र की तुंग तरंगों में उसी की शक्ति है । भागीरथी के जलप्रवाह में उसी का उद्वेग है । वक्ता के पद लालित्य में उसी का प्रभाव है । चित्रकार की लेखनी में उसी का महत्व है । शिल्पकार की टांकी में उसी की शक्ति का आविष्कार है । न्यायाधीश का वही न्याय है । योद्धाका वही वीरत्व है । परोपकारी का वही धर्म है । सिंहका कोप, बकरी की दीनता, हिरन की चंचलता, सब उसीकी शक्तिके रूप हैं ।"

(१) नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, वृक्षोंमें पीपल आदि देखते देखते अब यह भावना धारण करो कि सर्वत्र परमात्मा विराजमान है । न केवल चन्द्रमा में वरन् प्रत्येक नक्षत्र में वह मौजूद है । न केवल पीपल में बल्कि प्रत्येक वृक्ष में और उसकी डाली डाली और पत्ते पत्ते में वह विराजमान हो रहा है ।

इस "विश्वरूपदर्शन" का मुख्य यही अभिप्राय है कि मनुष्य प्रभु परमात्मा को प्रत्येक वस्तु में अन्तर्यामी समझ कर उसको सर्वत्र नमस्कार करे ।

इस पर यह श्रुति है :—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्व चक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ५६ ॥
(भ० गी० ११ । ८)

संगति—अब उस अद्भुत रूप वाले को किन आंखों से देखें यह बतलाते हैं :—

अर्थ—परन्तु मुझ (परमात्मा) को तू इन आंखों (चर्म चक्षुओं) से तो नहीं देख सकता, (इसलिए) तुझको मैं दिव्य-चक्षु (१) देता हूं। अब मेरे योग के ऐश्वर्य (२) को देख।

" सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्र पात् :—
(यजुः ३१ । १)

(१) दिव्य चक्षु—खास प्रकार की आंखें—ज्ञान नेत्र। इस पर यह श्रुति है :—

" स आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुःसवा एव एतेन दैवेन चक्षुषा मनसेतान् कामान् पश्यन् रमते छा० उ० ८ । १२ । ५) (

(२) इससे स्पष्ट है कि अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन श्री कृष्ण जी ने अपने योग बल से कराया था।

जो लोग यह समझते हैं कि अर्जुन ने किसी खास रूप का दर्शन किया होगा, उनको ज्ञात रहे कि यहां स्पष्ट कह दिया गया है कि "इन आंखों से तुम उस निराकार ब्रह्म नहीं देख सकते इसी लिये श्री कृष्णजी ने अपने योगबल से अर्जुन के हृदय में अपना ज्ञान भर दिया (जिस प्रकार आजकल मिस्मेरिज़म (Mesmerism) वाले लड़कों के आत्माओं पर अपना प्रभाव डाला करते हैं) यही दिव्य चक्षु दे देना था। अब ज्ञान की आंखों से अर्जुन ने देखा तो ब्रह्म परमात्मा को सर्वत्र व्यापक पाया। यही "विश्वरूप दर्शन" है। लोकमान्य तिलक महाराज भी गीता रहस्य के नवें प्रकरण "अध्यात्म"

अनेक वक्त्र नयनमनेकाद्भुत दर्शनम्।
अनेक दिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्॥ ५७॥
(भ० गी० ११। १०)

संगति—वह रूप कैसा है? सुनो

अर्थ—अनेकों मुखों (१) और आंखों वाला है और अनेकों प्रकार का दीखता है। अनेकों उसके दिव्य भूषण वस्त्र हैं। और अनेकों आयुधों (शस्त्रों) से वह सुसज्जित है।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः,
समुद्रमेवाभि मुखाद्रवन्ति।
तथा तवामी नर लोक वीराः,
विशन्ति वक्त्राण्यभि विज्वलन्ति॥ ५८॥
(भ० गी० ११। २८)

संगति—परमात्मा का दर्शन करलेने पर उसकी स्तुति कैसे करे? यह बतलाते हैं (यह तथा अगला श्लोक अर्जुन की ओर से स्तुति रूप है।):—

अर्थ—जिस प्रकार नदियों का जल-प्रवाह बड़े वेग के साथ समुद्र की ओर दौड़ा चला जाता है, उसी प्रकार (हे विराट रूप भगवन्!) ये मनुष्य लोग—शूर—वीर आदि (बड़े वेग से)

में पृष्ठ २०५ पंक्ति १ पर कहते हैं कि—"गीता में वर्णित भगवान का अर्जुन को दिखलाया हुआ विश्वरूप भी मायिक ही था।

(१) इस पर श्रुति यह है:—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो०।

आप के मुखों में प्रवेश करते चले जा रहे हैं(१)।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा,
विशन्ति नाशाय समृद्ध वेगा।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका—
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥ ५९॥
(भ० गी० ११। २९)

अर्थ—जैसे जलते हुये दीपककी ओर मच्छर आदि नाश होने के लिये बड़े वेग से दौड़े चले जाते हैं, उसी प्रकार ये लोग भी नाश होने (मरने) के लिये आपके मुख में बड़े वेग से घुसते चले जा रहे हैं(२)।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो,
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्र कृत्वः
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते॥ ६०॥
(भ० गी० ११। ३१, ३२, ३९, ४०)

अर्थ—(हे बड़े अद्भुत रूप वाले!) आप ऐसे उग्र (तेज़ तर्रार—तीक्ष्ण, काल) रूप वाले कौन हैं? (मैं समझता हूं कि

(१) मरने वालों के लिये परमात्मा काल रूप है। कुरुक्षेत्र के उस संग्राम भूमि में १८ अक्षौहिणी सेना मरने के लिये आ डटी थी, उसी का दृश्य अर्जुन को भासित हो रहा था कि वे सब मौत के मुंह में दौड़े चले जा रहे हैं

(२) ऊपरी बात को पुष्टि यहां दूसरे दृष्टान्त से भी की है।

यहां पर आप इन सब लोगों को समेट लेने के लिये प्रवृत्त हो रहे हैं !!! आपको नमः हो (नमस्ते) नमः हो, हज़ार बार नमः हो, आपको आगे से नमः हो, और पीछेसे भी नमः होवे(१) ।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ६१ ॥
(भ० गी० ११ । ५३)

संगति—विश्व रूप दर्शन समाप्त हुआ; अब उसकी महानता प्रकट करते हैं :—

अर्थ—हे अर्जुन ! मेरे (परमात्मा के) जिस अद्भुत रूप को तूने अभी देखा है, वह ऐसा है कि उसे कोई न तो वेदों को पढ़ने से, न तप से, न दान से, और न यज्ञ करने से ही देख सकता है (२) ।

---

(१) प्रत्येक मनुष्य को इसी प्रकार अर्जुन की भांति परमात्मा को प्रति दिन (प्रातः सायंकाल की सन्ध्योपासना में) नमस्कार करना चाहिये ।

इस पर यह श्रुति है :—

"नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्न मिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥
(यजुः । १६ । ६६)

(२) इस पर यह श्रुति है :—' नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् ॥
(मुण्डक उ० ३ । ३)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ ६२ ॥

(म० गी० ११ । ५५)

संगति—फिर आखिर किसी प्रकार देखभी सकेगा इस प्रश्न का उत्तर देते हैं :—

अर्थ—हे पाण्डव ! जो कोई मेरे (परमात्मा के) लिये कर्म करता है (निष्काम कर्मी बनता है) मेरा (परमात्मा का) भक्त बन जाता है, सब भूतों (प्राणियों) से निर्वैर (शत्रुता न रखनेवाला) और संग रहित (किसी से ज्यादा प्रेम न रखने वाला) बन जाता हैं, वह ही मुझ (परमात्मा) को पाता है। (परमात्मा का दर्शन कर लेता है) (१) ।

(१) इस श्लोक की टीका में श्री लोकमान्य पं० बालगङ्गाधर तिलक महाराज अपने गीता रहस्य में कहते हैं :—

उसे सारे व्यवहार इस निरभिमान बुद्धि से करना चाहिये कि जगत के सभी कर्म परमेश्वर के हैं, सच्चा कर्ता और कराने वाला वही है, किन्तु हमें निमित्त बना कर वह हमसे कर्म करवा रहा है...। शांकर भाष्य में भी यही कहा है कि इस श्लोक में पूरे गीता शास्त्र का तात्पर्य आगया है। इस से प्रकट है कि—गीता का भक्ति मार्ग यह नहीं कहता कि आराम से राम राम जपा करो, प्रत्युत उसका कथन है कि उत्कट भक्ति के साथ ही साथ उत्साह से सब निष्काम कर्म करते रहो" ।

इस पर यह श्रुति है :—

"यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ (कठ उ० ६ । १४)

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते॥ ६३॥
(भ० गी० १३। ३२)

सङ्गति—ऊपर परमात्मा का दर्शन करने का उपाय बतलाया गया है। अब कहते हैं कि उसकी खोज में हमें कहीं दूर देश—काशी, प्रयाग, जगन्नाथ, रामेश्वर आदि—नहीं जाना पड़ेगा :—

अर्थ—वह आत्मा (परमात्मा) सर्वत्र देह (के रग रग) में ठहरा हुआ है (परन्तु) इससे उसी प्रकार लिप्त नहीं होता जिस प्रकार आकाश सब जगह रहने पर भी सूक्ष्म होने से (किसी वस्तु के साथ) लिप्त नहीं होता (१)।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत॥ ६४॥
(भ० गी० १३। ३३)

सङ्गति—ऊपर आकाश का दृष्टान्त दिया गया, अब सूर्य का दृष्टान्त देते हैं :—

अर्थ—जिस प्रकार अकेला एक सूर्य सब लोकों को प्रकाशित

---

(१) इसलिये उसका दर्शन करने के लिये बाहर नहीं बल्कि अपने हृदय के अन्दर और आत्मा के भी अन्दर ही ढूंढो (देखो श्लो० ४३)।

इस पर यह श्रुति है :—

"आकाशो वै नाम नाम रूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतं स आत्मा प्रजा पतेः सभां वेश्म प्रपद्ये० (छा० उ० ८। १४। १)

करता है। हे भारत! उसी प्रकार वह क्षेत्री(१) (परमात्मा) इस सारे क्षेत्र (समस्त ब्रह्माण्ड) को प्रकाशित कर रहा है (२)।

सत्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत॥ ६५॥

(भ० गी० १४। ९)

सङ्गति—परमात्माके दर्शनकी दृढ़ इच्छा कैसे हो सकती है? यह बतलाते हैं :—

अर्थ—हे भारत! (तीन गुण मनुष्य के शरीर के अन्दर रहते हैं—सत्व, रजः, तमः) सत्व गुण जब बढ़ जाता है तो सुख में

(१) इस श्लोक में क्षेत्र—क्षेत्री पारि भाषिक शब्द आये हैं। श्री स्वामी शंकराचार्य महाराज का भाष्य इस प्रकार है:—क्षेत्रम् महा भूतादि धृत्यन्तम्

(भावार्थ—"महा भूतों को आदि ले के धृतिपर्यन्त समुदाय रूप) क्षेत्री = परमात्मा।"

(२) पूर्व श्लोक में आकाश तथा इस श्लोक में सूर्य के दृष्टान्त से ब्रह्म परमात्मा के सर्व व्यापक होने का सिद्धान्त समझाया गया है। एक बात स्मरण रखने योग्य है कि पूर्व श्लोक में जहां परमात्मा का हमारे शरीर में व्यापक होना दर्शाया है, वहां इस श्लोक में उसका समस्त ब्रह्माण्ड में विद्यमान होना कथन किया गया है। तात्पर्य यह कि प्रथम अपने शरीर के रग रग में उसको हम देखें फिर सर्वत्र देखने का अभ्यास करें।

इस पर यह श्रुति है :—

"सूर्य्यो यथा सर्व्व लोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषै र्बाह्य दोषैः। एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः॥

(कठ उ० ५ ११)

लगाता है। रजो गुण कर्म में लगाता है। और तमो गुण ज्ञान को छिपा करके प्रमाद (आलस्य) में लगा देता है (१)।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्य गुण वृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥ ६६॥
(भ० गी० १४। १८)

सङ्गति—उन तीनों गुणों का फल सुनो—

अर्थ—सत्व गुण वाले ऊपर (२) को जाते हैं। रजो गुण वाले मध्य में रहते हैं। और ख़राब वृत्तियों वाले तमो गुणी लोग नीचे को जाते हैं (३)।

सम दुःख सुखः स्वस्थः सम लोष्ठाश्म काञ्चनः।
तुल्य प्रियाप्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्म संस्तुतिः॥ ६७॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भ परित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥ ६८॥
(भ० गी० १४। २४; २५)

---

(१) इस लिये जो कोई अपना भला चाहे (परमात्मा का दर्शन करना चाहे) वह तमो गुण को बढ़ने न देवे, तामसी पदार्थों को खाने तथा तमो गुणी लोगों की सङ्गति में रहने से तमो गुण बढ़ेगा, अतः उनसे बचा रहे।

(२) "ऊपर" से यहां अभिप्राय ऊंचा दरजा, उच्च पद या उन्नतावस्थासे है। इसी प्रकार "नीचे" से पतित दशा समझो।

(३) इस लिए उन्नति (परमात्मा का दर्शन) चाहते हो, तो सत्व गुणी बनो अच्छे धर्मात्मा सज्जन लोगों की संगति में रहने तथा सात्विकी भोजन खाने आदि से सात्विकी स्वभाव वाले बनोगे।

सङ्गति—ऊपर तीनों गुणों का विवरण सुनाकर अब यह उपदेश देते हैं कि परमात्मा का दर्शनाभिलाषी गुणातीत बन जाय।

अर्थ—गुणातीत (उक्त तीनों गुणों की पहुंच से आगे बढ़ जाने वाला) वह कहलायेगा, जो सुख दुःखको बराबर समझ ले: जो स्वस्थ-अपने अन्दर रमण करनेवाला-हो; जो ढेला, पत्थर, सोना, चांदी को समान मानता हो; जो प्रिय और अप्रिय को बड़ाबड़ समझता हो, धीर (धैर्य रखने वाला) हो, जो अपनी निन्दा और स्तुति को बराबर मानता हो, जो मान और अपमान को तुल्य (एक समान) जानता हो, जो मित्र शत्रु के पक्ष को तुल्य रखता हो, और (सब से बढ कर यह कि) जो सब (प्रकार के) कार्यों को त्याग (१) कर चुका हो (ऐसा महात्मा परमेश्वर का दर्शन करने का पात्र माना जायगा)।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्ति योगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्म भूयाय कल्पते ॥ ६६ ॥
(भ० गी० १४। २६)

---

(१) सब कार्यों को त्यागनेसे अभिप्राय सांसारिक कार्यों—खेती,व्यापार राज्य-शासन आदि—को त्यागने से है, किन्तु जप, तप, स्वाध्याय, योगाभ्यास—आदि ऐसे कार्य नहीं हैं, जिनका त्याग किया जाय।

इस पर यह श्रुति है :—

"कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्य मभयस्य पारम्। स्तोमं महदुरु गायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोत्यस्राक्षीः ॥"

[कठ उ० २ । ११]

सङ्गति—उक्त प्रकार गुणातीत वन जाने का फल वतलाते हैं—

अर्थ—जो कोई अव्यभिचारी (डांवाडोल न होनेवाली) भक्ति योग द्वारा मेरी (परमात्मा की) सेवा (उपासना) करता है, वह इन (तीनों) गुणों को पार करके (गुणातीत वन करके) मुक्ति को पा जाता है [१]।

सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वं पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ७० ॥
(भ० गी० १८ । ६६)

सङ्गति—जो महात्मा गुणातीत वन गया हो वह फिर क्या करे? यह वतलाते हैं—

अर्थ—सब धर्मों को छोड़कर केवल एक मेरे (परमात्मा के) शरण में आ जा, मैं तुम को सब पापों से छुड़ा दूंगा, शोच (चिन्ता, फिक्र) मत कर (२)।

---

[१] इस पर यह श्रुति है :—

"वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयःशुद्ध सत्वाः। ते ब्रह्म लोकेषु परांत काले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥
(मु० उ० ६ । ६)

(२) इस श्लोक से बहुत लोग भारी भ्रम में पड़ गये हैं कि यह कैसा उपदेश है कि सब धर्मों को छोड़ देवे। परन्तु अब उन्हें जानना चाहिए कि वर्तमान भगवद्गीताके इस १८वें अध्याय के अन्तिम श्लोक की सङ्गति १४ वें अध्याय के ऊपरी २६ वें श्लोकके साथ मिलाने से स्पष्ट यह अभिप्राय निकल आता है कि

यह उपदेश (सब धर्म छोड़ने का) और किन्हीं लोगों को नहीं दिया गया, बल्कि गुणातीत लोगों को ही यह आदेश है। उनके लिये और आगे का यह मार्ग दर्शाया गया है कि वे सुख दुःख के बराबर होने, मित्र शत्रु में भेद न होने और सर्वत्र ब्रह्म को व्यापक देखने का अभ्यास करते करते अब और आगे बढ़ें और वर्णाश्रम के धर्मों और कर्त्तव्य कर्मों के बन्धन की परवाह छोड़ कर सारा समय और अपनी सारी शक्ति ब्रह्म में तन्मय हो जाने (समाधि आदि) में लगा दें (उसके शरण में चला जाना यही है) तो परमात्मा उस पर कृपा करके उसको अपनाय लेंगे (पापों से छुड़ाय देंगे)।

प्रश्न—क्या परमेश्वर पाप को माफ़ कर देंगे, फल नहीं भुगायेंगे ?

उत्तर—योग (ध्यान, धारणा, समाधि) तथा ज्ञान रूपी अग्नि में पाप रूपी मल दग्ध हो जाता है। यही बात उपनिषदों में कही गई है "भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे"। (मुण्डक उ० ४। ८)

भला जी ! अर्जुन इस पर कैसे अमल करता ? अर्जुन को यह कहा गया है कि तू अभी तो अपने वर्णाश्रम धर्म में बन्धा हुआ है, इसीलिये इस रणक्षेत्र में आ जाने से इस युद्ध में भाग ले। फिर विजय होनेपर यज्ञ दानादि शुभ कार्यों को करता हुआ निष्काम कर्मी बन जाना, पश्चात् गुणातीत बनने का अभ्यास करना और उसके पश्चात् इस श्लोक पर अमल दरामद करके

मुक्ति का

इस प्र ... का उप ... भर के लिये दे दिया ग

इस श्लोक पर एक बात और भी ध्यान में रखना चाहिये कि जिस प्रकार विद्यार्थी को क्रमशः एक एक कक्षा की पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं और आगे की पाठ्य पुस्तकें कठिन होती जाती हैं किन्तु प्रथम कक्षा के विद्यार्थी को एम० ए० कक्षा का पाठ नहीं पठाया जा सकता, उसी प्रकार यों समझना चाहिये कि इस अन्तिम श्लोक की शिक्षा उनके लिये हैं, जो मुक्ति रूपी कालिज के एम० ए० क्लास में पहुंच गये हैं। साधारण कक्षा वाले से (वर्णाश्रम धर्मी) इस उपदेशका कुछ भी सरोकार नहीं है, यह इस पर आरूढ़ होना चाहेगा तो—

"इतोभ्रष्टस्ततो भ्रष्टः"—बन जायगा, इसलिए भ्रम छोड़ कर गीता शास्त्र के अपूर्व उपदेशों पर अमल करते हुए कल्याण को प्राप्त करो।

इति मंगलानन्द पुरी संन्यासिना सम्पादिता आर्य भाषया सहिता यव द्वीपान्तर्गत वाली द्वीपाद् प्राप्ता सप्तति श्लोक युक्ता श्री मद् प्राचीन भगवद्‌गीता समाप्ता।

इत्योम् शान्तिः।

परिशिष्ट !

व्यापक ता का एक

संवत् १६६ , वि० में मेरी एक ा "श्री भगवद्गीता रत्न माला" को बम्बई के एक सेठ डा० ० पटेल (नड़ियाद निवासी) ने प्रकाशित कराया था। उस में मैंने ११ श्लोकों की एक विशेष प्रकारकी टीका छपायी थी। उसका एक श्लोक यहां पाठकों के विनोदार्थ उद्धृत करता हूं :—

यह वर्तमान भगवद्गीता के दूसरे अध्याय का ४७ वां तथा इस प्राचीन गीता का ११ वाँ श्लोक है। अच्छा देखिये :—

कर्मण्ये वाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फल हेतुर्भूर्मा ते संगोस्त्व कर्मणि॥

पदच्छेद—१ कर्मणि २ एव ३ अधिकारः ४ ते ५ मा ६ फलेषु ७ कदाचन ८ मा ६ कर्म-फल-हेतुः १० भूः ११ मा १२ ते १३ सङ्गः १४ अस्तु १५ अकर्मणि॥

शब्दार्थ—(१—४) तेरा अधिकार कर्म करने में ही हो (५, ६, ७) किन्तु कभी भी फलों (के भोगने) में न हो। (८, ६, १०) तू कर्मों के फलों का हेतु (निमित्त) न बन (११—१५) और न तेरी सङ्गति अकर्म (कर्म न करने) में ही हो।

व्याख्या—इस श्लोक में यह उपदेश दिया गया है कि कर्म करो किन्तु फल की लालसा न करो।

कर्म से अभिप्राय संसार के सारे ही कर्मों से है। खाना पीना, चलना, फिरना, सोना, जागना, आदि कर्म हैं; पञ्च महायज्ञ से लेकर अश्वमेध तक अनेक प्रकार के होम, यज्ञ, तथा दान, पुण्य, धर्म, कर्म, तीर्थ, व्रत इत्यादि भी कर्म ही हैं। गर्भाधान से लेकर मुण्डन, छेदन, व्याह, शादी और मरण पश्चात् शरीर दाह तक सारे संस्कार भी कर्म ही हैं। विद्या पढ़ना, वेदों शास्त्रों की अध्ययन करना, कला कौशल और सारे हुनरों को सीखना तथा अंगरेज़ी फ़ारसी इत्यादि पढ़ना पश्चात् इनके द्वारा संसार में काम करना भी कर्म ही हैं ईमानदारी सचाई से जीविका उपार्जन करना और चोरी बेईमानी इत्यादि न करना भी कर्मही हैं। ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमों के कर्तव्य पूरा करना तथा गृहस्थियों का अपने माता, पिता, स्त्री, पुत्रों का पालन पोषण करना इत्यादि भी कर्म ही हैं। धर्मशाला सदाव्रत (सुपात्रों के निमित्त) देवालय, कुवां, तालाव, बावली, साधु आश्रम, अनाथालय, विद्यार्थी आश्रम (बोर्डिंग हाउस), पाठशाला, कन्या पाठशाला, अन्धों, वहिरों, लूलों, लङ्गड़ों के आश्रम, चिकित्सा शाला (अस्पताल); पुस्तकालय (लायब्रेरी) इत्यादि २ धर्मखाते बनवा देना भी कर्म ही हैं। मकान बनवाना, बाग बगीचे लगाना, ज़मीदारी मोललेना तथा और भी अनेक प्रकार से अपने वंशजों के भविष्य लाभ निमित्त धन, सम्पत्ति की वृद्धि कर देना और दूसरों के साथ उपकार

करना तथा देश और जाति की भलाई के सारे ही कार्य करना इत्यादि इत्यादि भी कर्म ही हैं। रेल बनाना, नहर खुदाना, किले (दुर्ग) बनवाना, जहाज़ बनवाना, दुष्टों को ताड़न करके सज्जनों की रक्षा करने के लिये सेना रखना इत्यादि इत्यादि बड़े बड़े काम भी राजाओं महाराजाओंके कम ही हैं। निदान कहाँ तक गिनायें संसार के सारे ही अच्छे और शुभ कामों को कर्म और उनसे उलटे (बुरे, खोटे या अशुभ को) विकर्म समझो॥

प्रश्न—आपने तो संसार के सारे ही कामों को कर्म में लिख डाला, परन्तु अन्य लोग ऐसा नहीं मानते; वे तो केवल पारमार्थिक कामों जैसे यज्ञ, तप, दान, तीर्थ, व्रत इत्यादि को ही कर्मकाण्डमें लेते हैं—अतः प्रश्न यह है कि आपने उन सबसे निराला मार्ग क्यों ग्रहण किया?

उत्तर—भगवद्गीता का जो मुख्य उद्देश्य और ठीक ठीक तात्पर्य है वही हम प्रकट कर रहे हैं; और जिन लोगों की बात तुम कहते हो उनके समझ में यह धंसा है कि संसार और इसके सारे कार्य व्यर्थ (प्रपञ्च या मिथ्या) हैं। इसीसे वे कर्म काण्ड का ठीक ठीक अभिप्राय नहीं प्रकट करते। भला यह तो विचार करो कि अर्जुन को गीता का उपदेश रणभूमि के बीच में दिया गया और इसके समाप्ति पर महाभारत का युद्ध आरम्भ हुआ; इससे ही ज्ञात है कि गीता ने युद्ध जैसे कर्म को भी क्षात्र धर्मानुसार कर्मकाण्ड में सिद्ध किया है, इसी लिये हम भी कहते हैं कि वे सारे कार्य जो संसार की उन्नति के लिये किये जायं कर्म-

काण्ड में समझे जाने चाहिये।

इस प्रकार संसार के सभी कार्य जो "कर्म" (१) के अन्तर्गत माने जाते हैं ऐसे हैं जिन्हें लोग फल की लालसा से किया करते हैं—अगर कोई यज्ञ करता है तो इस लिए कि स्वर्ग मिलेगा, दान देता है तो इस आशा से कि अगले जन्म में उसका दस गुना, या सौ गुना या हजार गुना पायेगा ; सन्तान उत्पन्न करके उनका पालन पोषण करता है तो इस ख्याल से कि वंश बना रहेगा, या वे सन्तानें वृद्धावस्था में सेवा शुश्रूषा करेंगी, कमा कर खिलायेंगी, आज्ञा मानेंगी इत्यादि। इसी प्रकार मनुष्य जितने कार्य करता है उनके फलों की आशा प्रथम से ही बांध लेता है। इस श्लोक में भगवान श्री कृष्ण महाराज यह उपदेश देते हैं कि कर्म तो करो परन्तु फलों के लिये नहीं, वरन् इसलिये कि वह तुम्हारा कर्तव्य है। तुम कर्म मात्र करो, फलों की परवाह न करो, चाहे वह अनुकूल हो या प्रतिकूल। अगर किसी कार्य में तुम्हें हानि हो तो रंज या फिक्र न करो न उसके लिए अपने मन को दुखी और उदास करो। वस्तुतः जो मनुष्य कर्म को इस ख्याल से करेगा कि इसका करना हमारा धर्म, कर्तव्य और ईश्वराज्ञा है वह उस कर्म से होने वाले फल की परवाह न करेगा। चाहे उस का फल सुख दायक हो या दुःख दायक, दोनों दशाओं में वह प्रभु परमात्मा की वैसी ही मरजी मान कर सन्तुष्ट, आनन्दित और प्रसन्न चित्त रहेगा।

(१) कर्म से ऊंचा दरजा उपासना का और उससे उत्कृष्ट ज्ञान का है, जिन का वर्णन अन्य श्लोकों में आयेगा।

श्लोक के दूसरे भाग में (८—१०) इसी बात को और भी स्पष्ट कर दिया गया है कि—"तू कर्मों के फलोंका हेतु न बन"-- अर्थात् कर्मों को आरम्भ करते समय तुम्हारी दृष्टि फलों की ओर न रहनी चाहिये—दूसरे शब्दों में यह तात्पर्य है कि निष्काम कर्म करो । अभिप्राय यह कि यह ख्याल बाँधकर कर्मका आरम्भ न करो कि वह हमें अमुक फल देवेगा,—तुम विद्या पढ़ते हो यह एक कर्म है, पढ़ो अवश्य पढ़ो, परन्तु यह भावना मनमें मत रक्खो कि हम विद्या इसलिए पढ़ते हैं कि हम विद्वान् हो जाने पर सुखी हो ंगे । नहीं नहीं ऐसा ख्याल छोड़ दो, किन्तु यह भावना रक्खो कि विद्वान् बनना हमारा धर्म है, क्योंकि "विद्या विहीनः पशुः"—जो विद्या नहीं पढ़ता वह पशु है, इसका तात्पर्य यही है कि हम विद्या पढ़ें और हम विद्वान् बन कर संसार के अनेक उपकार कर सकेंगे, क्यों कि परोपकार करना हमारा धर्म है । निदान हम धर्म ही की खातिर विद्वान् बनते हैं ऐसी भावना रखना चाहिये, यही तात्पर्य है । इसी प्रकार धन सन्तान, राज्य इत्यादि के विषय में भी समझना । आगे जो श्लोक के अन्त में कहा है कि (११—१५) तेरी सङ्गति अकर्म (कर्म न करने) में न हो, इसका अभिप्राय यह है कि तुम कर्मों का त्याग भी न करो; अर्थात् कोई यह ख्याल न करे कि जब हमें कर्मों के फलों की वासना न रह गई और हम कोई कामना नहीं चाहते तो फिर कर्म क्यों करें, इसीलिये कहा गया है कि कर्मों को छोड़ कर आलस्य-मूर्ति बन कर नष्ट मत हो जाव ।

आज हम देखते हैं कि इस भारत खण्ड में लाखों मनुष्य सारे कर्तव्य कर्मों को छोड़ कर आलसी बन रहे हैं, इसी कारण देश की ऐसी दुर्दशा हो रही है कि जो हिन्दू जाति किसी समय सारे संसार की सिरताज थी, वह आज दूसरों के आधीन और दाने दाने को महताज हो रही है। यदि अब भी हमारे भाई अपने परम पवित्र गीता शास्त्र की आज्ञा पर चलने लग जांय तो उनके गये दिन फिर वापस आ सकते हैं।

गीता के प्रेमी सज्जनों! आपने "गीता के एक श्लोक" पर मेरी टीका देख ली है, अब अगर आप यह चाहते हों कि इस प्राचीन गीता के समस्त ७० श्लोकों पर इसी प्रकार की विस्तृत टीका प्रकाशित कराई जाय, तो कृपया अपना आर्डर खरीदारी पुस्तक का लिख कर मेरे पास भेज दें। और जो धनाढ्य उदार सज्जन हैं, उनसे प्रार्थना है कि यतः इस महान् कार्य में भारी खर्च दरकार है, यथा सम्भव धन से मेरी सहायता करें कि मैं ऐसे अच्छे, धार्मिक, हिन्दी साहित्योन्नति कारक, शुभ कार्य का सम्पादन कर सकूं। कुछ पूछना हो तो पत्र व्यवहार करें :—

पता—मंगलानन्द पुरी,
मुहल्ला अतरसूया, प्रयाग।
(इलाहाबाद)